विभाग : 15

शून्य पर आधारित ध्यान विधियाँ

धारणा - 133

इन्द्रिय शून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 133

पंच ज्ञानेन्द्रिय को शून्य मानो, बहुरंगी बहुभ्रामक जानो।
हृदय में शून्य ध्यान के कारण, शिव रूप में प्रवेश अकारण।।

ध्यान विधि - 133

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को भ्रामक मानकर - वे शून्य हैं; ऐसे भाव से हृदय में ध्यान करके सहसा शिवरूप बन जाओ ।

ध्यान एक आत्मनिर्भरता का मार्ग है। साहस का मार्ग है, वहाँ गुरू आपको केवल प्रेरित कर सकता है। प्रोत्साहित कर सकता है, कुछ हद तक आपकी तर्क करने वाली मति को शांत कर सकता है। आपको ध्यान की ओर थोड़ा धक्का दे सकता है, मोह निद्रा से थोड़े झकझोरते हैं। बाकी जागना तो आपको ही पड़ता है और आपको ही जागे रहना पड़ता है। ध्यान एक स्वतंत्र मार्ग है। यहाँ आप किसी व्यक्ति को कम तथा स्वयं को और ध्यान को ज्यादा समर्पित होते हैं।

प्रिय साधको!

पांच कर्मेन्द्रियों को शून्य समझो, उसमें भासित बहुरंगी विश्व को भी भ्रामक समझो और हृदय में केवल शून्य की धारणा करते करते शून्य में प्रवेश हो जाते ही अकारण ही शिवत्व की अवस्था में समावेश हो जाएगा।

प्रिय साधको!

यहां प्रारंभ में ही प्रश्न उठेगा कि ज्ञानेन्द्रियों का काम ही ज्ञान कराना है तो उसे भ्रामक कैसे समझें? बस इस संशय से ही सारे शून्यभाव ध्यान प्रकार से प्राप्त समाधान की यात्रा शुरु होती है।

ध्यान एक आत्मनिर्भरता का मार्ग है। साहस का मार्ग है, वहाँ गुरू आपको केवल प्रेरित कर सकता है। प्रोत्साहित कर सकता है, कुछ हद तक आपकी तर्क करने वाली मति को शांत कर सकता है। आपको ध्यान की ओर थोड़ा धक्का दे सकता है, मोह निद्रा से थोड़े झकझोरते हैं। बाकी जागना तो आपको ही पड़ता है और आपको ही जागे रहना पड़ता है। ध्यान एक स्वतंत्र मार्ग है। यहाँ आप किसी व्यक्ति को कम तथा स्वयं को और ध्यान को ज्यादा समर्पित होते हैं।

अब मज़े की बात यह है कि संपूर्ण समर्पण तो पूर्ण आस्था और श्रद्धा के पनपने के बाद ही घटता है। जब तक संशय है तब तक समर्पण कैसा? आज तक के ध्यानग्रंथों की भाषा गूढ़ रही है, गहन रही है, वह साधारण बोलचाल की भाषा जैसी नहीं है। उस भाषा का एक अलग स्तर से, उसे अलग चित्त से, अलग भाव से समझना पड़ता है। और साधारण मनुष्य के पास ऐसी क्षमता नहीं है। इसी वजह से ध्यान के और तंत्र के मूलग्रंथ लुप्त होते जा रहे हैं। अथवा लोग अनर्थ करते रहे हैं। अथवा लोग उसे नहीं समझ सकने के कारण उससे दूर चले जाते हैं, उलझन में पड़ जाते हैं। योग्य मार्गदर्शन अथवा सत्य से भरी गूढ़ भाषा को अनुभव से जाने हुए गुरु बहुत कम मिलते हैं। आज की आपाधापी में जीने वाला आदमी आध्यात्मिक उलझनों के लिए भी सीधा नेट खोलता है। नेट पर लिटरेचर मिलता है, ध्यान के बारे में बहुत सारी इन्फोर्मेशन भी मिल जाती है। फेसबुक पर आपके साथ ध्यान के बारे में प्रश्नोत्तरी करने वाले भी बहुत मिल जाएंगे। हजारों हजारों साईट उपलब्ध हैं धर्म की क्योंकि विश्व में धर्म जितना आसानी से चलता है, इतनी आसानी से कुछ भी नहीं चल सकता परंतु मैं कहूंगी कि ये साईट का, फेसबुक का या उससे भी कोई एडवान्स टेक्नोलोजी इजाद हो तो उसका भी विषय नहीं है। नेट द्वारा ध्यान का साहित्य प्राप्त करना या ध्यान के बारे में जानकारियाँ प्राप्त करना ये दूसरी बात है।

गुरू और मुमुक्षु के बीच का एक सूक्ष्म नेटवर्क होता है वहाँ व्यक्तिगत सेटेलाईट काम करता है, यह बहुत सूक्ष्म है; जिसे योगशास्त्र ईश्वर का मुख कहते हैं। जो मुख अज्ञान को खा जाता है। शिष्य के गर्व को खा जाता है और ज्ञान को प्रगट करता है। जिसे ध्यानीजन शक्तिपात प्रक्रिया कहते हैं। वह नेट से नहीं हो सकता, वह तो नगद होता है। वह प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूप से घटित हो सकता है परंतु इस आदान

प्रदान का संपूर्ण आधार पहले ध्यानी पर है, बाद में गुरू पर। क्योंकि ध्यानमार्ग में केन्द्र में ध्यान है और ध्यान को समर्पित होना है। ध्यान को समर्पित होने के लिए सबसे पहले ध्यान पिपासु ध्यान विधि की भाषा को समझे ये बहुत जरूरी है। हालांकि भाषा बहुत स्थूल माध्याम है। परंतु जब मनुष्य स्थूल होता जा रहा है, संवेदनाएं कम होती जाती हैं तब तरंगे कम मदद करती हैं। उसके पास गुरू की ज्ञान तरंगें सीधा ही आत्मसात कर पाए इतनी संवेदना नहीं है। इसलिए उसे लंबे रास्ते से गुजरना पड़ता है। गुरू को भी ज्यादा श्रम उठाना पड़ता है। परंतु कुछ गुरू करुणावश लोक संग्रह का कार्य करते जाते हैं। ऐसे गुरुओं को कोई नाम या धन की परवाह नहीं होती। उनके लिए तो अनुभवित सत्य को यथासंभव बाँटना ही सर्वस्व होता है। उसमें ही वे धन्यता का अनुभव करते हैं। उन्हें भीड़ में नहीं सच्चे साधक में रस होता है। उन्हें खुद में भी नहीं केवल ज्ञान में ही रस होता है। और ऐसे गुरु पहले तो उसके पुरोगामी गुरुओं की भाषा साधारण साधक समझ पाए इसलिए अपनी वाणी से सरलीकरण करते हैं परंतु उसमें भरा हुआ सत्य अकबंद रहे इसके लिए सजग होते हैं। फिर साधक के मन में उठते प्रमाणिक प्रश्नों का कुछ हद तक समाधान करते हुए उसे संप्रेरित करते हैं कि – अब आगे का समाधान, विशेष उत्तर – विधि में ही भरा है।

तू ध्यानविधि में उतर और खुद को जान ले। अब मेरी भूमिका खत्म हो गई और ध्यान की भूमिका आरंभ होती है। समझदार और सच्चा जिज्ञासु साधक गुरु के वचनों में विश्वास करके सत्यानुभव के लिए ध्यान में झुकता है। उसी क्षण सहज शक्तिपात प्रक्रिया घट जाती है। शक्तिपात कोई होलसेल में बेचने की चीज़ नहीं है। ध्यान मार्ग में गुरु शिष्य के हृदय को ध्यान के लिए मात्र तैयार करते हैं। ध्यान के लिए आस्था बढ़ाते हैं और कहते हैं कि सागर में मोती है खुद डुबकी लगा के

ढूंढो! तैरना सीखो! डूब नहीं जाओगे! वास्तव में तैर जाओगे। ऐसा विश्वास दिलाकर धक्का देकर हट जाते हैं और मुमुक्षु ध्यान में उतरकर वास्तव में तैर जाता है।

प्यारे साधको!

अब शायद आप समझ पाए होंगे कि गुरू ध्यानविधियों के बारे में साधक के मन में उठते हुए प्रश्नों का कुछ हद तक समाधान देते हैं। ध्यान ग्रंथों की गूढ भाषा सरल करके समझाते हैं। गुत्थियों से भी मस्तिष्क को थोड़ा सुलझाते हैं और साधक को मिथ्या प्रश्नों के पार ले जाते हैं। तथा सम्यक उत्तर में उतारने की क्षमता बढ़ाते हैं। वही शक्तिपात है। परंतु याद रहे! ध्यान मार्ग में गुरू प्रारंभ है, ध्यान पूर्णविराम।

अब आईए विधि की ओर, विधि को थोड़ा समझ लें, ताकि आप नि:संशय चित्त से ध्यान में उतर पाओ।

विधि कहती है कि पांचो ज्ञानेन्द्रियों को शून्य मानो क्योंकि उसके द्वारा हो रहा बहुरंगी ज्ञान मिथ्या है। आपके मन में प्रश्न उठ सकात है कि जो ज्ञान कराती है वह है ज्ञानेन्द्रिय। तो इसके द्वारा जो जो बोध होता है उसे मिथ्या कैसे मानें? उसे भ्रामक कैसे समझें? उसे झुठ कैसे कहें? उसे शून्य कैसे मानें?

प्यारे साधको!

यही तो मजे की बात है जगत में भासित सत्य असत् लगता है और आगमिक सत्य (ज्ञानियों की वाणी) असत्य लगता है। आप केवल ज्ञानेन्द्रियों से जो बोध होता है उसे ही सत्य मानकर चलते हैं। अगर आपको कोई कहेगा कि "ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या" अर्थात ब्रह्म ही सत्य है और दृश्यमान जगत मिथ्या है तो आप ऐसे कहने वाले को पागल कहेंगे। आज की पीढ़ी यही कर रही है। म्यूज़िक पार्टी, ड्रींक पार्टी, डिस्को पार्टी और रेव पार्टी ही सत्य है उन लोगों के लिए। टी.वी.

के रीयालिटी शो के पीछे युवा और व्यूअर्स पागल हैं। वास्तव में कुदरत का रीयालिटी शो बड़ी गुप्तता से चल रहा है। जिसका बोध मनुष्य को होते हुए भी वह उसका स्मरण करना नहीं चाहता। क्योंकि वह रीयोलिटी शो उसे भयभीत कर देता है। आज का यूथ वर्तमान को ज्यादा से ज्यादा भुगत लेना चाहता है। यह गलत नहीं है। हमारे शास्त्रों ने जन्म, मृत्यु, जरा (बुढ़ापा), और व्याधि की इतनी चर्चा की है कि पढ़ने या सुनने वाला मनुष्य सजग न हो तो भयभीत हो जाए, मानसिक दबाव में आ जाए क्योंकि आज के मनुष्य को पहले से ही ओवर प्रेशर है। आज की जीवन शैली ही ऐसी है कि बच्चों का बचपन छिन चुका है। पारीवारिक स्नेह बंधन टूट चुके हैं। विभक्त परिवारों के नाम पर केवल स्वार्थ पल रहा है। बड़ों का प्यार – महोब्बत की छत्रछाया से स्वतंत्रा और स्वच्छंद जीवन शैली की इच्छा से मनुष्य दूर हट गया है। सबको आज ही सबकुछ पा लेना है। युवान माता-पिता की जीवन शैली देखकर टीनेजर्स फ्रन्ट हो गए हैं। यूथ बोल्डनेस और फ्रीडम के नाम पर मदहोश होता जा रहा है। बेहोशी ने उसकी समझ को सुन्न कर दिया है। बेचारे साधु बाबाओं को भी टिके रहना है इस माहोल में! तो वे लोग भी भीड़ का हिस्सा बन चुके हैं। उन लोगों ने भी धार्मिक आध्यात्मिक सत्संग और शिबिरों के नाम पर फ्रेन्डशिप क्लब शुरू कर दिये हैं। क्योंकि उनको पता है कि सही तरीके से एकाद को जगाने में भी पूरी जिंदगी निकल जाएगी। इससे अच्छा है बहती गंगा में हाथ धो लें।

दोस्तो! मैं न रूढ़ीवादी हूँ, न धर्मांध, न प्यार मुहोब्बत के विरोध में हूँ। स्वतंत्रता के विपक्ष में भी नहीं परंतु मैं सिर्फ ये चाहती हूँ कि जो कुछ भी हो सजगता के साथ हो। जहाँ सजगता के साथ जीवन का प्रारंभ होता है वहाँ सुख-चैन, शांति और निर्भयता बरकरार रहती है। आज का यूथ शायद जीवन को जितना समग्रता से अेन्जोय कर रहा

है इतना अतीत में शायद कभी नहीं किया। परंतु दूसरी ये बात भी इतनी सत्य है कि आजकी नई पीढ़ी जितनी तनाव में है उतना तनाव अतीत के यूथ ने कभी नहीं भुगता। क्या आप इस बात का इन्कार कर पाएंगे? ऐसा क्यों? क्योंकि सजगता का अभाव है। शास्त्रों की सही व्याख्याओं के स्थान या तो सत्संग के नाम पर मनोरंजन परोसा जा रहा है अथवा बोरिंग बातें – घिसापिटी बातें।

मैं कहती हूँ कि नए मन के अनुसार शास्त्र पुराण, कथाओं की नूतन और सम्यक व्याख्या नई भाषा में होनी चाहिए। आज के मनुष्य को गुरुओं के द्वारा ऐसा भरोसा दिलाना अनिवार्य है कि स्वर्ग नर्क एक जीवन शैली है। धर्म भी एक जीवन शैली है। पाप-पुण्य की व्याख्या भयभीत होने के लिए नहीं है। परंतु जागने के लिए है। धर्म-संप्रदाय छुआ-छूत के नहीं परंतु मानव मन को स्थिरता प्रदान करने के लिए। हमारे द्वारा स्वयं को और दूसरों को बंधन और पीड़ा ही अधर्म है। मनुष्य जन्म पुनर्जन्म की चिंता नहीं परंतु जीवन को सार्थक करने का मौका देता है, वृद्धत्व युवानी में साधना – सिद्धि प्राप्त कर लेने की प्रेरणा देता है, नहीं कि केवल शरीर को निरर्थक रास्तों पर खत्म करने की। वृद्धत्व अपना बचा हुआ समय और अनुभव प्रेमपूर्णता से दूसरों में बाँटने के लिए है क्योंकि वृद्धत्व जीवन के अंतिम सत्य का अन्य को साक्षात्कार कराने की कुदरत की एक प्रेक्टीकल विधि है। जिसे अगर वृद्ध चाहे तो निराशा के स्वरूप में नहीं परंतु वास्तविकता का बोध कराते हुए शब्दों में दूसरों को जगा सकता है। परंतु इसके लिए जागे हुए वृद्ध चाहिए और याद रहे वृद्धत्व कभी कोई ऐसा चमत्कार नहीं करेगा कि वृद्ध जाग जाए। वृद्धत्व से तो वृद्ध थकता है, हारता है, निराश होता है। हाँ जिसकी जागने की प्रक्रिया युवानी या बचपन से शुरु हो गई है, ऐसा वृद्ध प्रसन्न होता है और अपनी बातों का बोरिंग पुनरावर्तने किए

बिना कुछ न कुछ ऐसा आकर्षण खड़ा कर सकता है कि उसके पास बच्चे – बड़े सब खिंचे आते हैं। वहाँ उपदेश की भावना नहीं रहती; वहाँ केवल एक वटवृक्ष की तरह शीतल छाया होती है जो छाया सहज ही बहुत कुछ कह जाती है। और ऐसा वटवृक्ष कुछ प्रश्न करने पर सम्यक उत्तर दे सकत है। और तब वह अपने अनुभव बांटे तो भी उसका ही राग आलाप रहा हो ऐसा नहीं लगता। उसका मौन, धैर्य, शांति और अनुभव आपको सहज ही बहुत कुछ दे सकता है। ऐसे वृद्ध से शारीरिक श्रम भले न हो परंतु उसकी हाज़री से भी आपकी सलामती, सुरक्षा, हूंफ और मैत्री की अनुभूति होती है। जरूरी नहीं कि ऐसे वृद्ध आपका सामाजिक रिश्तेदार हो। वास्तव में युवा हो या वृद्ध परंतु ऐसी समझदार मैत्री ही आपको जगा सकती है। कुछ दे सकती है। आपको पता भी न चले और आपको बातो बातों में ही कुछ सिखा देती है। बाकी करारों से बनती मैत्री कैसी कैसी शत्रुता पैदा करती है? ये आप सब जानते हैं। और बेहोशी से जब बेहोशी हाथ मिलाती है, तब युवानों की जिंदगी में कैसे कैसे दुष्परिणाम आते हैं? ये बातें मुझे कहने की जरूरत नहीं है क्योंकि ऐसी अनेकोनेक दुर्घटनाएं टी.वी. और अखबार रोज़ाना आपके माथे पर मारते हैं।

बात रही मृत्यु की। मृत्यु के कई रूप हैं। शांत मृत्यु, उचित मृत्यु, अपमृत्यु; ये सब निमित्त हैं किराए के घर को छोड़ने के लिए। मृत्यु सिर्फ इतना ही समझाती है कि आप शरीर के मालिक नहीं हैं, महेमान हैं; महेमान की तरह जिओ जिंदगी। किसीके घर जाते हो तो कितना अच्छा व्यवहार ओढ़ लेते हो? मैं कहती हूँ कि उस अच्छाई के नकाब को अपनी असलियत बना दो। एक अच्छे महेमान की तरह जी लो इस शरीर में। जिस क्षण ऐसा जीना शुरु किया कि तुरंत बोध घट जाएगा कि मेरे शरी में भी मुझे महेमान की तरह ही जीना है। मैं तो यहाँ

कुछ दिन ठहरने के लिए आया हूँ। जब क्षण आएगा तब मेरे शरीर को भी छोड़ देना है तो फिर दूसरे के मन या शरीर पर मेरा क्या अधिकार? क्या हक है मुझे? बस, बात खत्म। सारे कहल, पीड़ाएं और मनोवेदनाओं का अंत आ जाएगा। यही क्षण सजग मृत्यु की है। फिर शरीर छोड़ना तो एक घटना मात्र है।

बुद्ध वृद्ध, बीमार, शब और सन्यासी इन चार दृश्यों को देखकर तो जागे! आज के युवान में और बुद्ध में इतना ही फर्क है कि बुद्ध जागे और आज की पीढ़ी भाग रही है। चार दृश्यों को देखकर तो बुद्ध ने अपने जीवन के प्रमुख महावचनों में चार महासत्यों का समावेश किया। (१) जगत में दुःख है, (२) दुःख के कारण हैं, (३) दुःख का उपाय है, (४) दुःखमुक्त स्थिति हैं। लेकिन "जगत दुःख है", इतनी बात पर ही काफी साधु संत अटक गए। अबोध किशोर पीढ़ि को तो सब सुख ही सुख नज़र आते हैं क्योंकि वे बाल्यावस्था की पराधीनता की क्षणों को बिसार चुके हैं और आगे तो सशक्त, मस्त, नाचती-कूदती, उछलती जवानी दिखाई दे रही है। ऊर्जा के धोध का अहेसास हो रहा है। वे क्यों सुनेंगे दुःख की बातें? उन्हें तो जगत ही सत्य लग रहा है, यह संसार की वास्तविकता भी है। उसे कौन नकार पाएगा? क्यों मानेगी जवानी कि ब्रह्मसत्य? ब्रह्म तो बेचारा कहीं दिखाई नहीं दे रहा है क्योंकि अनुभव, माहोल, चिंतन, अध्ययन कुछ भी नहीं है। उपदेश बोरिंग माहोल पेदा करते हैं। सत्य लग रहा है तो केवल जगत। इसमें कोई दोष नहीं है युवानों का। वही तो सही मौसम है मस्ती का, सांसारिक आनंद का, वर्षा में कौन सोचेगा भला पतझड़ के लिए? संसार की वास्तविकता तो एक ही है और वह है "जगत सत्य"। परंतु संसार स्वयं अवास्तविक है।

जो हाथ से निकल जाता है वह है संसार। साधारण आदमी चाहता है कि हाथ से निकल जाए उसके पहले उसे भुगत लूं और

समझदार मनुष्य चाहता है कि हाथ से निकल जाए इसके पहले उसे जान लूं और जाग लूं। जानना और जागना योग से विपरीत नहीं है परंतु भोग के पार जाना है। भोग से पार जाने का भाव जागता है सजगता से। सजगता आती है ध्यान से, जागे हुए संतों के सांनिध्य से, साक्षीभाव से, स्पष्ट दृष्टि से, गहन अध्ययन से, अभ्यास से। आजका मनुष्य एक ऐसे युग में पैदा हुआ है कि जहां सब अपना ही राग आलाप रहे हैं। धन, वैभव को ही सर्वस्व माना जा रहा है। कपड़ों की जगह महेंगी फैशन पहनी जा रही है। आत्म स्मरण के स्थान पर आत्म विस्मरण के सारे रास्ते खुले पड़े हैं। धार्मिक भीड़ में पर्दे के पीछे मेरेज ब्यूरो जैसा माहोल है। दिखने में थर्डक्लास भिखारी मंदिर के बाहर खड़े हैं और दिखने में फर्स्टक्लास भिखारी मंदिर के भीतर या दर्शन के लिए लाईन में खड़े हैं। मेरे कहने का हेतु है यह कि दोनों प्रकारों का काम एक ही है कुछ ना कुछ मांगना। वे उसकी शांति भोगों के मांगने में ढूंढते हैं। भोगों के पार जाने में नहीं। क्यों? क्योंकि आत्मदृष्टि का अभाव है। "जगत मिथ्या" वाक्य क्या जताता है? इस बात की समझ नहीं है। "ब्रह्म सत्य" अपने भीतर और अणु-अणु में घूमता दृश्यमान सत्य होने पर भी आदमी अनदेखा कर रहा है। इस हालात में उसे कैसे जगाएं? मैं कहती हूँ, ध्यान अंतिम उपाय है।

भगवान और महात्मा साधारण इन्सान से बड़ हैं और दुनियवी फिलसूफी ये है कि बड़ों से मांगने का छोटों को अधिकार है। बस इस बात को पकड़कर आदमी छोटा बना रहता है और माँगता रहता है। इस मानसिकता से मनुष्य को बाहर लाने के लिए भारत के कई मनिषियों ने प्रयास भी किया है। वेदों के महावाक्य भी मनुष्य के मन की माँग को रोकने के लिए, लघुताग्रंथिभाव से मुक्त करने के लिए और स्वार्थवृत्ति तथा पलायन से बचाकर उसको स्वयं की शक्ति का बोध कराकर

दायित्व स्वीकार करने के लिए ही है। पतंजलि भी मनुष्य के चित्त की वृत्तियों को खो देने के लिए ही मनुष्य को योग के आठ अंगों के माध्यम से प्रेरित करता है। क्यों? क्योंकि मन का अस्तित्व वृत्तियों में है और वृत्तियों को बढ़ावा मन के द्वारा मिलता है। वृत्तियाँ मिटि तो मन मिटा, मन मिटा तो वृत्तियाँ मिटी – यही है शून्यता। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय है, ध्यान। कुछ लोग कहते हैं कि वृत्तियों का मिटना असंभव है। वृत्ति में ही मानव का अस्तित्व है। बात सटीक है, वृत्तियाँ मिटते ही मनुष्य ब्रह्मरूप बन जाता है। जिसे लोग भगवान कहते हैं। वृत्तियां मिटने का अर्थ है– अब वृत्तियों की गुलामी गई। वृत्तियों का कब्जा गया। वृत्तियाँ अब नचाने के लिए सक्षम न रहीं। ज्ञान की आग में वह इतनी क्षीण हो गई कि उसके हाथ में अब ज्ञानी या ध्यानी का कोई काबू ना रहा। अस्तित्व मिटने का अर्थ ये मत करना कि शरीर खत्म हो गया। संसार का अस्तित्व, संसार के विकसित होने का राज़ वृत्तियों में है। वृत्तियाँ अदृश्य होते ही संसार अदृश्य। फिर ध्यानी संसार में रहेगा परंतु ध्यानी में संसारिकता नहीं रहेगी, ऐसी अवस्था को ज्ञानी जन शिवत्व, बुद्धत्व या ब्रह्मत्व कहते हैं। मैंने कहीं लिखा है –

जो सोने में मिट्टी देखे, और मिट्टी में सोना देखे
वो दिल की दौलत पाता है, यहाँ कायर का कुछ काम नहीं।

ज्ञानेन्द्रिय का शून्य में प्रवेश हुए बिना ये कैसे संभव हो सकता है?

एक बार एक नए नए फकीर ने पुराने फकीर ने पुराने फकीर को कहा कि जल्दी चलो! हमारी झोंपड़ी के पास सोने की खदान निकली है आस पास में रहने वाले लोग जंगली और अबोध हैं तो उसका फायदा उठाकर सोना पा सकते हैं। फिर रोज रोज रोटी मांगने जाने की झंझट खत्म हो जाय। हम और फकीरों को भी रोटी दे पाएंगे।

पुराने फकीर ने जवाब दिया, अरे भाई! मुझे तो हर फकीर के भीतर हीरे, मोती, सोने की खदानें नज़र आती हैं। तू कैसा फकीर है कि इतने करीब का खजाना नज़र नहीं आता है और दूर की खदान खोदने निकला। इधर आ – उठा चीपिया, नाचना–झूमना कर शुरू, भीतर का सोना चमक उठेगा। वहाँ तक जाना, मिट्टि में से सोना निकालना, इसका शोधन करना, भला सोच तो सही! क्या हम ये सब मजूरी करने के लिए फकीर बने हैं? नए नए फकीर को ज्ञान हो गया। वह नाचते नाचते ध्यान को और ध्यान से अमूल्य धन "सत्य" को उपलब्ध हो गया। फिर कभी भी उसको झोंपड़ी के पास वाली सोनी की खदान से कुछ पाने की तमन्ना नहीं रही। यही है निवृत्त दशा का सही अर्थ।

वृत्त का अर्थ होता है तरंगें, जो ध्यान में उतरा उसकी तरेंगायितता शांत हो गई; तरंगी मन अदृश्य हो गया। बचा शुद्ध मन, जो आज्ञांकित सेवक की भांति ज्ञानी का सहयोग कर रहा है। परंतु ज्यादातर लोग तो तरंगी हैं, सनकी हैं, तुक्केबाज हैं, वृत्तियों के गुलाम हैं। उन्हें शांत रहना पसंद नहीं। कुछ नहीं तो ऐसे लोगों ने तंबाकू पैदा कर ली, एक मूर्खतापूर्ण पद्धति। तंबाकू ढूंढना, खरीदना, डब्बी में या पुड़िया में भरना फिर उसे बनाना, चुना–वुना डालकर ज्यादा नशीला बनाना, मुंह में भरी रखना ताकि खालीपन न लगे, फिर थूकना; फिर खाना, फिर थूकना, फिर खाना – व्यस्तता के लिए।

आदमी को अमृत के लिए पुरुषार्थ नहीं करना है, ज़हर आसानी से मिल रहा है तो व्यसन के नाम पर ज़हर पीना शुरु। उसका भी कारण है। जनम जनम से उसे विषय, वासना, क्रोध, लोभ, इर्ष्या, राग, द्वेष आदि के ज़हर की आदत पड़ी हुई है। वह जब खुलकर यह सब नहीं कर सकता तब व्यसन के जरिए ज़हर पीना शुरु कर देता है। अच्छे काम में जब मनुष्य अपनी ऊर्जा को कार्यान्वित नहीं कर सकता तब तंबाकू जैसे

निरर्थक विषय में रस लेने लगता है और कहता है कि दिमाग को किक लगती है।

मैं कहती हूँ कि रोटी खाना बंद कर दो बिना भोजन केवल तंबाकू से किक लगे तो पूरे पाक शास्त्र को बदल देंगे। पोषण शास्त्र को मैं नए सिरे से लिखूंगी। फालतू और हताश लोग अपनी हताशा और असफलता छिपाने के लिए बाहरी चीजों पर ज्यादा आधार रखते हैं। ऐसे लोगों को मैंने ध्यान करते हुए नहीं परंतु ध्यान की बातें करते हुए खूब देखा है।

मैं फिर से एक बार कहूंगी कि जो भीतर की दौलत पा लेता है वह वक्त के पार चला जाता है। उसे चीजों से मन नहीं भरना पड़ता। नज़र इतनी साफ हो जाती है कि उसे मिट्टी में सोना यानि अपने भीतर ही कुछ बहुमूल्य और सोने में निरर्थकता दिखाई देती है। परंतु यहाँ कायर का कुछ काम नहीं, ध्यान साहस का मार्ग है।

गुरू प्रारंभिक समाधान देकर ध्यानमार्ग पर आपको धीरे से गतिशील कर देते हैं। फिर रफ़्तार तेज़ होते होते समाधि में अंतिम समाधान प्राप्त हो जाता है। फिर ज्ञानेन्द्रियाँ बाहरी विषयों का ज्ञान करती हूई भी उसकी ओर अज्ञान में जीती हैं। दुर्लक्ष रहती है। उसकी सहज उपेक्षा हो जाती है। तभी शून्यभाव और साधक विकसित हो सकता है।

मैं एक बार फिर से कहती हूँ कि आपको प्रश्न उठ सकता है कि जो इन्द्रियाँ ज्ञान कराती हैं वह है ज्ञानेन्द्रिय, वह अपने विषयों का ज्ञान करता है और मनुष्य के मस्तिष्क को समाचार देते हैं। कुछ व्यवस्था चेतातंत्र में ऐसी भी है कि मस्तिष्क का संदेशा इन्द्रियों को मिलता है और इन्द्रियाँ कार्यान्वित होती है। हाँ! ऐनाटॉमी, पिनिज़योलोजी तक तो यह सब बराबर है, परंतु ज्ञान के स्तर पर सब कुछ मिथ्या है।

अब आईए शून्य भाव ध्यान की ओर। आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ जो आपको ज्ञान कराती हैं वह जगत के स्तर पर सही हैं परंतु वह आत्यंतिक सत्य नहीं है। क्योंकि एक दिन तो ऐसा आएगा जब दृश्य, देखने वाला और दृष्टि सबकुछ खो जाएगा। अब आप ही कहिए कि जो नाशवंत है अथवा क्षणिक है अथवा परिवर्तनशील है उसे क्षणिक सत्य कह सकते हैं परंतु पूर्ण सत्य कैसे कहें?

सत्यज्ञान और मिथ्याज्ञान के लिए पतंजलि दो शब्द देते हैं। प्रमाण और विपर्यय। संस्कृत का प्रमाण शब्द "प्रमा" पर से आया है। प्रमा अर्थात परम सत्य को देखने वाली अंतर्दष्टि और विपर्यय अर्थात मिथ्या ज्ञान।

जगत जागतिक तौर पर सत्य है फिर भी आत्यंतिक दृष्टि से मिथ्या है। क्योंकि संसार में कुछ भी शाश्वत नहीं है। इसका अर्थ ये हुआ कि किसी अदृश्य शक्ति ने यह संसार लीला उत्पन्न तो की परंतु लीला मात्र लीला ही है; वह कभी भी उसे समेट सकता है। पर्दा कभी भी गिर सकता है, नाटक खत्म। क्योंकि नाटक आखिर नाटक होता है। वह सब कल्पना पर आधारित होता है – उसमें सत्य कुछ भी नहीं होता। हम इस विश्वनाटक का एक अंश हैं। नाटक पूरा होते ही जैसे शून्यावकाश छा जाता है वैसे ही ज्ञानी पुरुष नाटक चालू होते हुए भी उस शून्य में पहुंच जाते हैं और समझते हैं कि अंत में सिर्फ वही वास्तविकता है। शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं। अज्ञात ईश्वर के बनाए हुए इस पुतले को कार्यान्वित करने के लिए उसमें इच्छा शक्ति, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति का संचार मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा किया। परंतु यह सब संचालन व्यवस्था निश्चित समयावधि तक ही है, कायम नहीं। अगर यह विराट समय के संदर्भ में मानव को मिथ्या जगत के रंगरूप को देखने की, सुनने की, और स्पर्श करने की शक्ति क्षणिक ही है तो फिर उसके

पार पहले से ही क्यों न चले जाएं? बुद्ध ने शून्य पर बहुत ज़ोर दिया है। एक एक आवरण से हटकर कैसे महाशून्य में अथवा केवल शून्य में प्रवेश हो ये विधि बहुत पैने ढंग से समझाई है।

विज्ञान भैरव तंत्र में भी शिव पार्वती को शून्य धारणा पर कुछ विधियाँ देते हैं। इसी परिपाटी में मैं भी आपको कुछ शून्यभाव पर आधारित विधियाँ बता रही हूँ –

"पंचज्ञानेन्द्रिय............"

साधक को बार–बार प्रश्न तो उठ सकता है कि ज्ञानेन्द्रिय तो ज्ञान कराती है। इसे भ्रामक कैसे समझें? बस यही समझने की बात है। मेरे द्वारा आपको केवल इतना ही प्रारंभिक समाधान मिल सकता है कि जगत मिथ्या है इसलिए जो हुआ वही मिथ्या है। इसलिए जीव के पास जो साधन हैं वे सभी मिथ्या हैं और उन साधनों के द्वारा जो कुछ भी दिखाई देता है, सुनाई देता है, समझा जाता है, स्पर्श किया जाता है, बोला जाता है... इत्यादि मिथ्या है। केवल वह तभी सार्थक है कि आप जाग जाओ। आप पृथ्वी पर जागने और जगाने के लिए आए हैं। आपके इन्द्रिय मंडल का व्यापार भले होता रहे परंतु आप उसमें उत्सुक न हों, आपको उसका सहज आनंद ....लाभ तथा सहयोग भले मिले परंतु आप उसके गुलाम नहीं बनेंगे।

सजगता के साथ एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि आंख के सामने से दृश्य भले गुजरें परंतु जरूरी नहीं कि चेतना भी दृश्यों के साथ दौड़ती रहे। आपका मन दृश्यों में प्रवेश करता रहे। आपके कान के इर्द–गिर्द भले कितनी ही खलबली हो परंतु जरूरी नहीं कि वह आपको विक्षेप कर पाए। शब्द आपके इर्द–गिर्द हो सकते हैं परंतु आप नि:शब्द अवस्था में रह सकते हो। आपके इर्द–गिर्द लोग भले कितनी भी बातें किया करें परंतु आप अंतर से मौन में हो सकते हैं। भीड़ में आपको कोई

भले छू ले परंतु आप अस्पृश्य रह सकते हैं। पंरतु ये सारी बातें साधारण मनुष्य की समझ क्षमता और अनुभव के बाहर की हैं। बिलकुल दुनियादारी आदमी ऐसी बातें मानने के लिए भी तैयार नहीं होगा।

मेरा एक ही ध्येय है कि मनुष्य स्वाभाविक भले रहे परंतु साधारण ना रहे। केवल इन्द्रियों के आधार पर या इन्द्रियों के इर्द–गिर्द जीने वाला मनुष्य चेतना के स्तर पर विशेष रूप से सजग होकर स्वयं की शक्ति को पहचाने और शरीर में रहते हुए भी उसकी गुलामी से पार चला जाए। वही प्रबुद्धत्व है। इसका मतलब ये नहीं कि शरीर निरर्थक बन जाएगा। परंतु सही अर्थ में सार्थक होगा। शरीर साधन रहेगा, साध्य नहीं, शरीर माध्यम रहेगा उद्देश्य नहीं। इन्द्रियाँ सहयोगी रहेंगी; एक प्रसन्न आनंदित और शांत जीवन के लिए परंतु आप पर हावी नहीं हो पाएंगी।

दोस्तो! मनुष्य को इस सत्य का बोध कराने के लिए ही इतनी सारी विधियाँ दी गई हैं। वैसे तो ध्यान तो ध्यान है – एक बार ध्यान में प्रेवश हो जाने के बाद विधि गिर जाएगी और बचेगा सिर्फ ध्यान। तो आपको प्रश्न उठेगा कि तो एक ही विधि क्यों नहीं? इतनी सारी विधियाँ क्यों? जवाब बहुत सीधा और स्पष्ट है।

"many man many minds."

मनुष्य को अनेक चित्तवान कहा है। सबके पास अलग अलग चित्त है और वह भी जल तरंग की तरह सदंतर तरंगायित रहता है – क्या पता? किसके चित्त को कौनसी विधि रास आ जाए? बात रास आने की है। ऐसा ज़रूरी नहीं कि किसान ने गेहूं पका लिए, तो मक्का, बाजरी या जुआर कि चावल न पके। किसान अपनी भूमि के अनुसार भांति भांति की चीजें पकाता रहता है। जिसे जो रास आता है, सुपाच्य और शक्तिप्रद लगता है उसे आरोगता है। वैसे ही ऋषि अपनी हृदयभूमि

पर सत्यों को विविध प्रकार से उगाता रहता है। जिसमें से कुछ ज्ञानविधियाँ हैं, कुछ ध्यानविधियाँ हैं, कुछ सत्संग, भजन आदि पनपता ही रहता है। जिसे जो रास आता है, उसका स्वीकार करता है।

प्यारे साधको!

अब आईए, इन्द्रियशून्य ध्यान विधि को भलीभांति समझ लें।

आपके पास सांसारिक चीजों का ज्ञान कराने के लिए पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं – आंख, कान, नाक, चमड़ी और जिह्वा। परंतु याद रहे ! ध्यान संसार में रहकर संसार के पार जाने की कला है। भोग में डूबकर भोग के पार निकलना है। शरीर में रहकर शरीर के पार जाना है। और इस कला को हस्तगत करने के लिए बहुत उपयोगी है इन्द्रियशून्य भाव ध्यान। इन्द्रियाँ उपयोगी तो हैं ही परंतु मैं जिस तरह से आज के मनुष्य को देख रही हूँ तो लगात है कि इन्द्रियाँ उसकी मदद कम करती हैं और उपद्रव ज्यादा। प्रमुखतः शरीर में सारे दंगाफसाद इन्द्रियद्वारों से ही प्रारंभ होता है। कोई दंगा आंख से शुरु होता है तो कहीं शब्द हल्ला मचाता है। कभी मन इन्द्रियों से आकर्षित होकर अंदर ही अंदर शोरगुल मचाता रहता है तो कभी कान शब्द को भीतर भेजकर आग लगा देता है। कुछ शब्द दिलपर मुलायम अत्याचार गुज़ारते हैं। मानव मन की छुआछूत की धारणा ने आजतक करोडों दलितों को बरबाद और पिछड़े हुए ही रखा है। तो कई बार इसी धारणा से भड़के हुए दलितों ने हिंसा भी फैलाई है और अपने अधिकारों के लिए लड़े भी। और कभी कभी मनुष्य मनचाहे सौंदर्य को छूने और पाने के लिए दुनिया सर पर उठाता रहा है।

प्रिय साधको!

मुझे समझने की कोशिष करना। मैं शरीर की निंदा नहीं कर रही हूँ ना इन्द्रियों की। ये निंदा करना मैंने कई ढोंगी गुरुओं के लिए छोड़ रखा

है। मैं तो जीवन की उपासना के लिए आपको संप्रेरित कर रही हूँ और सही जीवन की उपासना इन्द्रियों के सम्यक उपयोग में ही। जब तक मनुष्य किसी भी चीज के आकर्षण या बंधन से पार नहीं चला जाएगा तब तक वह उसका सम्यक उपयोग करना नहीं सीखेगा। किसी भी चीज के पार जाने के लिए चीज को छोड़ना जरूरी नहीं है परंतु उसके प्रति निवृत्त हो जाना ही काफी है। आप उसके प्रति लक्ष्य न दें। आपकी वृत्ति वहाँ भटकती न रहे इतना ही पर्याप्त है। जब वृत्ति का चीज के इर्द-गिर्द भटकना बंद हो गया तो आपके लिए वह चीज शून्य हो गई। बस इतना ही करना है। ध्यान कोई भारीभरखम विधि नहीं है। यह तो एक सम्यक समझ का विकास है, जो गहन अभ्यास के बाद हासिल हो जाता है। इस बात को एक छोटे से उदाहरण के द्वारा समझें।

एक मन तृप्त है दूसरा अतृप्त। याद रहे! यहाँ मैं पेट की बात नहीं कर रही हूँ, मन की बात कर रही हूँ। परितृप्त मन के मनुष्य के पास भोजन की कितनी भी चीजें रखेंगे परंतु उसका पेट भरा हुआ होगा तो चीजों को छुएगा तक नहीं। परंतु अपरितृप्त मन के मनुष्य के सामने स्वादिष्ट और आकर्षक भोजन सामग्री पड़ी होती तो उसका पेट भले भरा हुआ हो, फिर भी वह कुछ न कुछ उठाता रहेगा, खाता रहेगा। उसे पता है कि पेट बिगड़ेगा, सेहत बिगड़ेगी, प्रमाद बढ़ेगा - परंतु वह बेचारा है, उसके पास भोजन के बारे में सम्यक समझ नहीं है। स्वाद को तृप्त करने के क्षण का उसे मूल्य नहीं है। उसका पेट तो भरा है परंतु मन खाली है। खाली नहीं अतृप्त है, असंतुष्ट है; इसलिए खाता रहता है। उसको स्वाद-बेस्वाद भोजन का आनंद, क्षुधा, पिपासा, सेहत कुछ भी लेना देना नहीं। उसको केवल इन्द्रिय व्यापार से और मन के लालच से ही संबंध है। उसे समझना भी फिजूल है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं कि जो दोष खुद को नहीं स्वादिष्ट भोजन को देते हैं। उनके पास अपने पक्ष में

कई दलील होंगी। ऐसे लोगों को समझने के लिए अपनी क्षण नहीं बिगाड़नी चाहिए। उसकी स्वयं की समझ विकसित हो तभी कुछ हो सकता है।

मैं कहती हूँ, ध्यान है मनुष्य की सच्ची समझ विकसित करने का एक मार्ग। वे मार्ग अनेक अनेक हैं; इनमें से एक है इन्द्रियशून्य भाव ध्यान। इस ध्यान में इन्द्रियों का विरोधी नहीं बनना है, न इन्द्रियों की निंदा करनी है परंतु इन्द्रियाँ होते हुए भी उनके पार जाने की क्षमता विकसित करनी है। ताकि इन्द्रियों से जरूरत पूरी होती रहे परंतु प्रश्नों के झमेले खड़ा न कर दे। वे आपकी आज्ञा में रहें, आप उसके लिये कायल न बन जाओ।

वैसे तो शून्यभाव से संलग्न आठ विधियाँ हैं परंतु हम आरंभ कर रहे हैं पांच ज्ञानेन्द्रियों को शून्य मानने के अभ्यास से।

मैंने आगे बात की थी कि हमारे मनीषियों ने ज्ञान को भी दो भाग में बांटा है। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभ्यास है। उन लोगों ने पूरा जीवन ही बिता दिया मनुष्य चित्त का अभ्यास करने में और उसको अनेक चित्तवान से एक चित्तवान फिर एकाग्रचित्तवान और फिर चित्त के पार जाने में मदद करने के लिए। मैं उन्हें चित्तनिष्णात कहूँगी। उन्होंने ज्ञान को भी दो भागों में बाँटा – सत्यज्ञान और मिथ्याज्ञान। मनुष्य को जो स्वयं में स्थिर और तृप्त कर देता है वह है सत्यज्ञान और जो अन्य पर निर्भर रखता है यह है मिथ्याज्ञान। आपके शास्त्र क्या कह रहे हैं? टिपीकल कौन सी व्याख्या दे रहे हैं उससे मेरा खास लेना देना नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि आप ज्ञानविषयक व्याख्यायें देते हुए शास्त्रों का खोलकर बैठो तो उसके शब्दों से मेरे शब्द बिलकुल न बैठते हों क्योंकि वह भाषा बहुत पुरानी हो चुकी है। मेरा कार्य आज के मनुष्य के साथ है और मनुष्य चित्त के नवनिर्माण से है। मुझे ज्यादा प्रमाणों की

जरूरत नहीं है। प्रमाणों की जरूरत उसे पड़ती है कि जो खुद की बात सच्ची है ऐसा साबित कना चाहता हो अथवा जिसे खुद पर भरोसा न हो। अथवा जो पंडितों से घबराता हो अथवा येनकेन प्रकारेण अपनी बात दुनियां से मनवाना चाहता हो। इन चारों में से मेरा एक भी आग्रह नहीं। अनुभव प्रमाण से आगे है।

अनुभव के बाद प्रमाण फीके पड़ जाते हैं। मेरे पास मैं खुद प्रमाण हूँ। मेरे अनुभव प्रमाण हैं। मैं ये दुनियां के लिए कह ही नहीं रही हूँ। मैं तो उन लोगों के साथ बात कर रही हूँ जिन्हें मुझमें भरोसा है। जो मुझे किसीके साथ कम्पेयर करना नहीं चाहते। परंतु अपने ध्यानविकास में मेरा सीधा सहयोग लेना चाहते हैं। मैं उन लोगों के साथ बात कर रही हूँ जो ध्यान को चाहते हैं और जो मुझे चाहते हैं। मुझमें संशय करने वालों के लिए मैं प्रिय नहीं हो सकती और वे मेरे प्रिय नहीं हो सकते। मुझे सिर्फ इतना पता है कि मनुष्य मुझे प्रिय है और मैं उसके श्रेय की बात कर रही हूँ। मेरा संपर्क आज के मनुष्य से है; पाँच-दस हजार वर्ष पुराने मनुष्य से नहीं। सहजता से पुराने प्रमाण काम आ जाएं तो अच्छी बात है परंतु मेरी बात सही है ऐसा सिद्ध करने के लिए मुझे किसी भी प्रकर के शास्त्रीय प्रमाणों की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मुझको मुझमें भरोसा है। मुझे ये भी पता है कि पुरातन ज्ञान प्रवाह ही मेरी बात का उद्‌गम स्थान है – शब्द क्रांति अथवा धर्मक्रांति तो समय की मांग है, फिर संशय की बात ही निर्मूल हो जाती है।

प्रिय साधको!

अब लक्ष्य दीजिए विधि की ओर। पांच ज्ञानेन्द्रिय को शून्य मान लो। अर्थात आंख है तो दृश्य का सवाल है परंतु आंख के स्थान केवल शून्य है। शून्य तो साक्षी है; शून्य का अर्थ है – कुछ न होना, आँख है ही नहीं तो फिर दृश्य, दर्शन, दर्शन पर विचार, फिर विचार के पीछे

मन या शरीर का जाना। कुछ भी नहीं बचेगा। उपद्रव के मूल कारण को शून्य कर दिया जाए तो उपद्रव आगे नहीं बढ़ सकता। और याद रहे! मन की निरउपद्रव अवस्था ही ध्यान है।

केवल आँख ही नहीं आँखों के साथ साथ कान, त्वचा, घ्राण और जिह्वा सब इन्द्रियाँ रूप, शब्द, स्पर्श, गंध और रस की विविधता के कारण दुनिया रंगीन और रसिक लगती है। उस रंगीनता और रसिकता का विरोध किए बिना उसके पार भी जाया जा सकता है। इस सत्य के बोध के लिए यह ध्यान विधि है।

प्रिय साधको!

इस ध्यान में आप तभी उतर पाएंगे अथवा तभी आपको रस जगेगा जब कि आप ज्ञानेन्द्रियों का सहयोग लेते हुए भी जहाँ कहीं भी वह चित्त में भ्रामकता पैदा करती है तो वह भ्रम बंधन बन जाता है और वह बंधन दुःख का कारण बनता है, ऐसे स्पष्ट बोध के साथ तय करो कि मुझे ऐसी भ्रामकता से ऊपर उठ जाना चाहिए। साधन मात्र साधन रहना चाहिए, वह सर्वस्व नहीं बन जाना चाहिए। ज्ञानेन्द्रियां शरीर रक्षा के लिए और जीवन की सुविधा के लिए है परंतु मेरी मालिक नहीं हैं। वे कुछ संदेश और शक्तियों के आदान-प्रदान के द्वार हैं। वे द्वार मेरे चाहने पर बंद हो सकते हैं। उसका कार्य बंद करना मेरे हाथ में है। मेरा संचालन उनके हाथ में नहीं।

प्रिय साधकों!

ज्ञानेन्द्रियों का काम बाहरी चीज का ज्ञान कराना है। परंतु अध्यात्म संपूर्ण अंतर्जगत से सम्मिलित है। उस आध्यात्मिक समावेश में ज्ञानेन्द्रियाँ अगर बाधा बन रही हैं तो ऐसे साधकों को यह ध्यान विधि मदद कर सकती है।

तीव्र धारणा करो कि पांच ज्ञानेन्द्रिय के स्थान केवल शून्य है।

शून्य कुछ देख नहीं सकता, कुछ कर नहीं सकता। शून्य का अर्थ है "न कुछ" जब आप आंख, कान, घ्राण, त्वचा और स्वादेन्द्रिय को एक के बाद एक बिलकुल शून्य मान लेंगे तब उससे संबंधित विषयों से आपका तदात्म्य सहज ही टूट जाएगा।

आजकल मार्केटिंग वाले "विज़्युलाईज़ेशन" पर खूब जोर देते हैं। वह आदमी को दुनियां के संदर्भ में ज्यादा चतुर–चालाक–उपजाऊ बनाना चाहते हैं। परंतु यह "विज़्युलाईज़ेशन" वास्तव में ध्यानशास्त्र से उतरा धारणा या कल्पना या भाव शब्द का अनुवाद मात्र है। उसका इस्तेमाल माइन्ड पावर बढ़ाने के नामसे कुछ लोग दूसरे अर्थ में कर रहे हैं परंतु वास्तव में यह विज़्युलाईज़ेशन शिव, बुद्ध, पतंजलि आदि अनेक मनिषियों ने मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से बिना अवलंबन विकसित होने के लिए दिया था। जहां मनुष्य अपने मन से ही अपनी निर्धारित ज्ञानावस्था तक पहुंचने में सफल होता था। मन को किसी एक अवस्था की कल्पना में जोड़कर उसकी शक्ति से सफलता प्राप्त करके उसके पार होने की यह कला है।

यहाँ, इस धारणा में आपको कल्पना करनी है अथवा आपके मन को धारणा देनी है कि ज्ञानेन्द्रियों का अस्तित्व है ही नहीं। वह केवल शून्य है। अगर है भी तो आपको उसके अस्तित्व का स्वीकार नहीं करना है। जब तक आप धारणा में उतर रहे हो तब तक मान लो कि चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, त्वचा और जिह्वा के स्थान केवल शून्य हैं। हाँ, यह धारणा इतनी आसान भी नहीं। क्योंकि आपको बरसों से इन्द्रियों में जीने का अभ्यास है, उसमें ही आपने आपका अस्तित्व मान लिया है। जैसे अंधे की खोज केवल आंख होती है। वैसे अबोध मनुष्य की खोज केवल इन्द्रिय सुख है। परंतु ध्यानशास्त्र आपको वहाँ से ऊपर उठाकर एक ऐसे अज्ञात विश्व में ले जाना चाहता है कि जहाँ इन्द्रियों की उपेक्षा करके या

उसके पार जाकर भी आप आनंदित रह सकते हैं। और वही परमानंद अथवा निरालंब आनंद है और यह आनंद और शांति आभासी नहीं परंतु वास्तविक है। और ध्यानयात्रा में लगे हुए सभी ऋषि चाहते हैं कि मनुष्य को वास्तविक आनंद और शांति का अनुभव हो, और इसलिए विविध प्रकार के ध्यान प्रकार की खोज करके उसका वर्णन करते हैं, समझते हैं, बताते हैं और उस विधि के लिए मनुष्य मन को प्रेरित करते हैं।

वे चाहते हैं कि मनुष्य चेतना की आत्यंतिक शांति में बाधा खड़ी करने वाली प्रत्येक चीज से मनुष्य ऊपर उठ जाए और अंत में देह का मोह भी छूट जाए ताकि देहत्याग भी उसके लिए मौत नहीं परंतु एक ध्यानविधि बन जाए, सहज बन जाए। देह छूटने पर भी साधक का चित्त शोक से अछूता रहेने का अभ्यास कर ले – और वही वास्तविक दुःखमुक्ति का उपाय है। बुद्ध का ध्येय यही था अगर बुद्ध के उपदेश में से ध्यान निकाल लो तो बुद्ध बुद्ध ही नहीं रहेगा। एक साधारण संत, उपदेशक, धर्म स्थापक, समाज सुधारक बनकर रह जाएगा पर्रुत बुद्ध नहीं। क्योंकि सच्चा प्रबुद्धत्व तो ध्यान से ही जन्मता है। मन और बुद्धि के पार की अवस्था है, प्रबुद्धत्व; और यह अवस्था ध्यान से उपलब्ध होती है।

प्रिय साधको!

जब तक आप पांच ज्ञानेन्द्रिय को शून्य नहीं मानेंगे तब तक उनको नए–नए विषय मिलते रहेंगे। नए नए विषयों के साथ मन व्यस्त रहकर भीतर अस्वस्थता उत्पन्न करेगा और आप अनचाही अनेक प्रकार की पीड़ाओं से घिरते जाएंगे। जो आपको जीवन में कभी भी शांति, मुक्ति और परम प्रसन्नता का अहेसास नहीं होने देगा।

इसलिए शून्यभाव ध्यानविधियों में गुज़रने के अभ्यास में सबसे पहले आरंभ करो ज्ञानेन्द्रियों से। जो ज्ञान मिथ्या है, ऐसे ज्ञान के पीछे

ऊर्जा व्यय मत करो। चित्त क्षोभ पैदा मत करो। पीड़ाओं को खड़ा मत होने दो, भ्रामकताओं से बचो। जगत के मिथ्यातत्व को समझो।

जैसे ही आप ज्ञानेन्द्रियों के पार चले जाओगे अर्थात उसमें शून्य की भावना दृढ कर लोगो तो हृदय में सहज ही शून्यता छाने लगेगी और बिना किसी आयास प्रयास आपका सहज समाधि में प्रवेश होगा, उसे ही बुद्धत्व अथवा शिवरूपता कहते हैं।

प्यारे साधको!

इस ध्यान को आप एक जगह बैठकर करें ऐसा जरूरी नहीं। आजतक जो आपने ध्यान के बारे में सुना है उनमें से ज्यादातर लोगों ने ऐसी ही कहा है कि शुद्ध आसन पर शांत स्थान में बैठकर ध्यान करो। ये गलत नहीं है परंतु कुछ विधियाँ ऐसी हैं कि जो सक्रियता में की जाती हैं। इन्द्रियशून्यभाव ध्यान भी एक ऐसी ही विधि है। आंखें मूंदकर तो हरकोई दृश्य से अथवा आंखों से पलायन कर सकता है, कांनों में अंगुली डालकर कोई भी व्यक्ति शब्द से पलायन कर सकता है, नाक बंद करके गंध से दूर रह सकता है परंतु पूरी पूरी सजगता के साथ उन इन्द्रियों को अपनी सहजता में रहने दो और आप उसके स्थान पर शून्य का भाव करो, तब इन्द्रियाँ काम करती हुई भी आपको कार्यांवित नहीं कर पाएंगीं। आप उसके पार चले जाओगे। उनके व्यापार आपको विक्षिप्त नहीं कर पाएंगे।

आप उसकी बहुरंगीन भ्रामकताओं के प्रति सजग हो जाएंगे। आपकी चेतना नहीं जाएगी उनके साथ और धीरे धीरे आपके लिए शून्य धारणा हृदयस्थ हो जाएगी। हृदय में जब शून्य भाव स्थिर हो जाएगा तब आप एक परिशुद्धशून्य को प्राप्त करेंगे। वही स्वाभिविक समाधि को निष्पन्न करेंगे।

मैं ये नहीं कहूंगी कि यह ध्यान सुबह में करो, रात में करो या

ब्रह्म मुहुर्त में करो कि एकांत में करो। ये ध्यान एकांत में करने के लिए है ही नहीं। यह ध्यान विधि एक उच्च कोटि के साधक के लिए हैं और वह प्रतिपल अभ्यास का विषय बनेगा तभी सफलता को उपलब्ध हो सकता है।

याद रहे! लोग पागल कहेंगे, परिवार आपका परित्याग कर सकता है परंतु ऐसा होने से पहले संभावना ये है कि आपके लिए विश्व सहज ही परित्याज्य बन जाए, मार्ग साहस का है। निरर्थक को भस्मीभूत करने की आग दिल में है तो मेरे शब्द चिंगारी का काम कर जाएंगे और सत्य का चिराग जगमगा उठेगा।

धारणा - 134

सर्वशून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 134

द्वादश में से कोई स्थान में, अथवा अन्य व्यक्ति वस्तुमें।
शून्यभाव से परम प्रकाशा, प्रगटे रहे न दुन्यवी आशा।।

ध्यान विधि - 134

शरीर के बारह शक्ति केन्द्रों में अथवा किसी भी वस्तु और व्यक्ति में केवल शून्य का तीव्र भाव करके परम प्रकाश को प्राप्त कर लो ।

बुद्ध भी एक बार आनंद से कहते हैं कि कभी कभी शिष्य शास्ता को शत्रु बनाते हैं, मित्रवत नहीं; परंतु ऐसा मत करना, मुझे मित्रवत मानना तुम्हारे लिए दीर्घकाल तक सुखदायक होगा। अनुकंपक, हितैषी शास्ता शिष्य या जिज्ञासु पर अनुकंपा करके उसे धर्मोपदेश करते हैं परंतु विभिन्न उपद्रवों से भरा शिष्य का मन उसे सुनना नहीं चाहता, चित्त को अन्य जगह से हटाकर शास्ता के वचनों में नहीं लगाते और शास्ता के शासन (उपदेश) का अतिक्रमण (उलंघन) करके बरतते हैं। शास्ता के सत्य का ऐसा व्यवहार शत्रुवत है, मित्रवत नहीं। हर तरफ से अपने चित्त को हटाकर जो शास्ता के वचनों की ओर ध्यान देते हैं वैसे श्रावक का व्यवहार मित्रवत है।

सूक्ति का अर्थ – जन्माग्र, मूलाधार, कंद, नाभि, हृदय, तालुमूल, कंठ, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरंध्र, शक्ति और व्यापिनी – इन बारह में से किसी भी ध्यान में क्रम से या अक्रम से अथवा तो अपने शरीर के सिवाय की अन्य व्यक्ति अथवा वस्तु कुछ भी दृश्यमान हो तो उस सब स्थान में शून्यता का भाव करने से साधक परम प्रकाश को प्राप्त होता है और उसके मन में फिर से दुन्यवी भावों को उत्पन्न होने की कोई संभावना नहीं बचती है।

प्रिय साधको!

भगवान बुद्ध ने अपने उपदेश में शून्य पर काफी जोर दिया है। राहुल सांस्कृत्यायन ने बुद्ध की प्रमुख विचारधारा "मज्जिम निकाय" अर्थात मध्य मार्ग के भाष्य में १६ प्रकार के शून्य बताए हैं। चित्त की महाशून्यता का योग बताते हुए भगवान बुद्ध शाक्य जनपद कपिला वस्तु में आनंद को महाशून्य का बोध देते हैं। जो बौद्धशास्त्र में महासुञ्ञता सुत्त में जो बात करते हैं वह बिलकुल शिव के शब्द ही लगते हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि शिव के सामने पार्वती बैठी थी – शिव ने देशना करोडों वर्ष पहले की, तो बहुत संक्षेप में शिव बहुत कुछ कह सके। उन्हें

ज्यादा विस्तार करने की जरूरत नहीं पड़ी। केवल शून्यभाव ध्यान के थोड़े विभाग कर दिए। बुद्ध करीब २६०० वर्ष पहले हुए तब मनुष्य बदल चुका था। मन विशेष रूप से अस्रवों (मनोमल) से ग्रस्त हो चुका था। नीचे से ऊपर तक सबकुछ बदलने की आवश्कता थी इसलिए बुद्ध को विस्तार से बोलना पड़ा।

इसी बात को आज मुझे एक बिलकुल अलग भाषा में समझाना पड़ता है – क्यों? क्योंकि युगधर्म। वैसे तो मैं कुछ भी नया नहीं कह रही हूँ परंतु आज के मनुष्य को जो भाषा चाहिए, जो चिंतन चाहिए इस प्रकार से मैं ध्यान विधियाँ बता रही हूँ। शायद इतना ही मेरा योगदान है। मैं ये सब बातें आपसे एक उपदेशक के भार के साथ नहीं परंतु मित्र की तरह शेयर कर रही हूँ। हाँ, कभी-कभी कटुवचन, कटुसत्य अथवा आपको गहरी चोट पहुंचे ऐसी बात भी आती है परंतु आज का मनुष्य इतनी मूर्छा में है कि उसे गहरे झटके देना अनिवार्य बन गया है, उसे जगाने के लिए, उसके कल्याण के लिए है।

बुद्ध भी एक बार आनंद से कहते हैं कि कभी कभी शिष्य शास्ता को शत्रु बनाते हैं, मित्रवत नहीं; परंतु ऐसा मत करना, मुझे मित्रवत मानना तुम्हारे लिए दीर्घकाल तक सुखदायक होगा। अनुकंपक, हितैषी शास्ता शिष्य या जिज्ञासु पर अनुकंपा करके उसे धर्मोपदेश करते हैं परंतु विभिन्न उपद्रवों से भरा शिष्य का मन उसे सुनना नहीं चाहता, चित्त को अन्य जगह से हटाकर शास्ता के वचनों में नहीं लगाते और शास्ता के शासन (उपदेश) का अतिक्रमण (उलंघन) करके बरतते हैं। शास्ता के सत्य का ऐसा व्यवहार शत्रुवत है, मित्रवत नहीं। हर तरफ से अपने चित्त को हटाकर जो शास्ता के वचनों की ओर ध्यान देते हैं वैसे श्रावक का व्यवहार मित्रवत है। हे आनंद! मैं ऐसा पराक्रम नहीं करना चाहता कि कुम्हार कच्चे पात्रो में। मैं तो निग्रह और प्रकार कर-कर के

व्याख्यान करता हूँ, यहाँ जो सार है वह ठहरेगा।

प्यारे साधको!

शायद सभी अवतारी तीर्थंकर या पैयगंबरों ने कहा है कि कुपात्र को ज्ञान मत देना। आस्थाहीन मनुष्य को उपदेश मत करना। क्यों? बुद्ध की भाषा में कहें तो आप किसीसे सुन रहे हो परंतु शास्ता के प्रति आस्था नहीं है, ध्यान नहीं है, लक्ष्य नहीं है, अनुशासन का आचरण करने का निश्चय नहीं है तो आप शत्रुवत हैं। शत्रु से लाभ हो पाएगा?

गीता में कृष्ण भी कहते हैं कि श्रद्धहीन और भक्तिविहीन मनुष्य को गीता का ज्ञान नहीं देना चाहिए। अर्जुन अगर केवल मित्र होता तो कृष्ण उसके सामने गीता का गान नहीं करते परंतु वह कृष्ण की शरण में आकर शास्ता के रूप में कृष्ण का दर्शन करके शिष्यत्व ग्रहण करके घुटने टेककर कहता है कि "जिसमें मेरा कल्याण हो ऐसा करो।"

जब कृष्ण को लगता है कि अब अर्जुन मेरे आध्यात्म उपदेश के अनुशासन के लिए तैयार है अर्थात मित्रवत् चेष्टाएं दिखाई दे रही हैं तब गीता का प्रारंभ करते हैं।

भागवत में वेद व्यास भी स्पष्ट कहते हैं कि "अभक्त को यह विज्ञान और परम ज्ञानकथामृत नहीं देना चाहिए।"

पार्वती तो शिव की परम प्रेमिका और भक्ता बनकर ही चरण में बैठी है तो वहाँ शिव को बोलना नहीं पड़ा कि मुझे मित्रवत सुनिए। क्योंकि परम प्रगाढ़ और उपमा के पार की मैत्री का दर्शन हो रहा था। शिव के प्रत्येक शब्द को पीने के और पचाने लिए पार्वती प्यासी और मुमुक्षु थी। फिर भी पूरे विज्ञान भैरव की ११२ धारणा बताने के बाद शिव कहते हैं कि कुपात्र को यह ज्ञान नहीं देना चाहिए।

सबकी बात एक ही है। ज्ञान हो या ध्यान, भक्ति हो या सत्संग परंतु जब तक शास्ता को न लगे कि मेरे द्वारा उपदिष्ट शास्त्र का (सत्य

का) अनुसरण होगा तब तक वह देशना का आरंभ नहीं करते। अथवा सुपात्र के पास आरंभ करने के बाद अंत में चेताते जरूर हैं कि कुपात्र को यह ज्ञान मत देना क्योंकि ज्ञान निरर्थक नहीं जाना चाहिए। ज्ञान में शास्ता अपनी सारी ऊर्जा उड़ेल देता है और श्रावक को (शिष्य को) नया जन्म देता है। रत्नगर्भा पूर्णनारी और ज्ञानीपुत्र की इच्छा करने वाली कौन माता चाहेगी कि उसका गर्भपात हो जाए? उसका श्रम विफल जाए? शास्ता एक अर्थ में मित्र है, एक अर्थ में माता है, एक अर्थ में पिता है, एक अर्थ में गुरू है, एक अर्थ में स्वयं भगवान है और एक अर्थ में शिष्य की प्रतिछबि है।

प्रिय साधको!

मुझे शून्यभाव की दूसरी विधि की ओर आगे बढ़ना है परंतु इससे पहले ये भूमिका अत्यंत जरूरी है। ताकि आप केवल विधि जानने के लिए स्वार्थी या उतावले न बन जाओ।

मैं कहती हूँ कि मुझे मित्रवत मानो। मित्र के सामने अहंशून्यता घटित होनी स्वाभाविक है। बस, यह अहंशून्यता की क्षण में जो आपके भीतर जगह बनेगी वह मेरे लिए बहुत है। वह जगह मेरी बात के लिए बनेगी जिसका सहज स्वीकार हो जाएगा। वह सहज सुपाच्य हो जाएगी। उसका स्वाभाविकता से अनुसरण हो जाएगा। आपको विशेष आयास प्रयोस नहीं करना पड़ेगा। यह एक ऐसी घटना है कि कोई भी अन्जान आदमी आपको कीमती गिफ्ट भी देगा तो आप उसकी ओर ज़्यादा लक्ष्य नहीं देंगे क्योंकि वहां प्रेम का तार नहीं जुड़ा है। परंतु प्रेमी या मित्र एक छोटी-सी गिफ्ट देगा तो भी आप उसे देखने के लिए उतावले हो जाएंगे। वहाँ आप गिफ्ट की किमत नहीं, मूल्य देखते हैं। आप खुश हो जाते हैं, आप उस चीज को उचित जगह पर सजाते हैं, आप इसलिए खुश हो जाते हैं क्योंकि वह गिफ्ट भले चीज के रूप में है परंतु वास्तव में वह

प्रेम है। प्रेम चमत्कार कर देता है।

प्यारे दोस्तों!

यही बात शिव, राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, वेदव्यास सभी ने दोहराई है। भाषा अलग अलग है, बात एक ही है कि ज्ञान का स्वीकार प्रेम के माध्यम से। आप जो इस बात को समझ लें तो मेरी बताई हुई दो सो एक विधियों में से एक भी कठिन नहीं लगेगी, मूल्यवान गिफ्ट लगेगी। परंतु अगर मित्रवत स्वीकारना या समझना नहीं चाहा तो यह विधियाँ आपको दिमागी तौर पर थोड़ा भारी कर सकती हैं। आप मेरी पुस्तकों में से कुछ चुराकर किसीको प्रभावित करने की कोशिष करेंगे। परंतु याद रहे! चोरी में हमेशा भय होता है, आज नहीं तो कल चोरी पकड़ी जाती है। गिफ्ट में कोई भय नहीं होता। वह तो हम सरेआम पहन सकते हैं। ओढ़ सकते हैं, घर में सजा सकते हैं। मैं कहती हूँ कि मेरी ध्यानविधियों को पहनो, पियो, खाओ, ओढ़ो, जीवन में उसे सजा लो, मढ़ लो और उसका सहयोग लेकर और भी मूल्यवान बन जाओ।

प्यारे दोस्तो!

आजतक एक ही शास्त्र के द्वारा २०१ ध्यान विधियाँ आपने शायद कभी नहीं पाई होंगी। शिव ११२ विधियों पर ठहर गए हैं। तब इतनी ही आवश्यकता होगी। मैंने उनमें कुछ मिलाकर २०१ तक पहुंचाना चाहा। मुझे नहीं लगता कि फिर विश्व में कोई ध्यानविधि बाकी रहेगी। लोग मुझे पूछते हैं कि आप तो अद्‌भुत वक्ता हैं तो अब आप कथा क्यों नहीं करतीं? दोस्तो! मुझे लगा कि आज के मनुष्य के लिए रामकथा अथवा कृष्णकथा से ध्यान-कथा ज्यादा उपयोगी है। युग बदल गया, आदर्श बदले, संस्कृति बदली, आचार-विचार सब बदलें - अब राम की बातें ही थोपना ये अत्याचार है। हाँ, जिसे राम प्रिय है उसको उसके जरिए पहुँचाओ - जगाओ। परंतु जहाँ अमेरिकन स्टाईल से जीना शुरु

हो गया है। पीपल हाऊस कानून बन गया है, बूढ़ों को सरकार पेन्शन देती है – ये सब समाज की बदलती हुई एक नग्न छबि के सामने "प्राण जाय बरु वचन न जाई" की बात लोग उड़ा रहे हैं। और कहते हैं कि हम रघुवंशी नहीं हैं – ये साली सब बोरिंग बातें हैं। कथाकारों के लिए आज के लोगों को कोई खास रिस्पेक्ट नहीं रहा। कोई भी पेटी तबला लेकर बैठ जाता है, पुराणों की वंशावली पढ़ने परंतु ज्ञानकथा छूट जाती है। कुछ फालतू लोग टाईम पास के लिए, मनोरंजन के लिए, मुफ्त के भोजन के लिए और कुछ दोस्तों को सहेलियों को इस बहाने मिल लेने के लिए तथा गाना बजाना तथा कीर्तन की भड़ास निकालने के लिए सुबह शाम तीन तीन घंटे बैठ जाते हैं।

सभी कथाकारों की कथा में उनमें से ज्यादातर लोग भक्त कम और आलोचक विशेष होते हैं। उनके पास और कुछ काम नहीं है तो एक कथाकार की दूसरे के साथ तुलना करते रहते हैं। बिना मांगे, बिना चाहे दो टके का आदमी विभिन्न कथाकारों के न्यायाधीश बने बैठे हैं। और सबको एक मूर्ख कमिटि मुफ्त में सर्टीफाईड करती रहती है कि फलाने भाई संस्कृत अच्छी जानते हैं, फलाने बापू संगीत अच्छा परोसते हैं, फलाने कथाकार जोक्स अच्छे कहते हैं, फलाने बापू में पंडाल और बैठने की सुविधा बहुत अच्छी होती है। और जो उनको रास न आए ऐसे कथाकारों को फेल कर देते हैं। ऐसे मूर्खों की भीड़ के सामने बोलना गुनाह है। उर्जा का व्यय है, क्षय है, आयु को क्षीण करना है। मूढ़ों का समुदाय आपको जब शत्रुवत मान रहा हो अर्थात आपकी देशना को दत्तचित्त होकर न सुन सकता हो तो ऐसों के सामने मौन रहना या स्थल त्याग देना ही ज्ञान का परम धर्म है। जो मैं कर रही हूँ।

लोग अनुसरण करने में बिलकुल विफल जा रहे हैं और भटकते हुए मन से आपको सुन रहे हो फिर भी जो शास्ता बोलना नहीं छोड़ता

तो उसे बुद्ध आचार्य उपद्रव कहते हैं। यह उपद्रव आज के युग में बहुत बढ़ गया है। शिव केवल पार्वती के सामने बोले। कागभुशुंड केवल गरुड के सामने, याज्ञवल्क केवल भारद्वाज के सामने बोले, वशिष्ठ केवल राम के सामने बोले, राम कई बार केवल लक्ष्मण या भरत के सामने बोले, कुंभज केवल शिव के सामने बोले, भगवती भुवनेश्वरी ने केवल तीन को ही उपदेश दिया– ब्रह्मा, विष्णु और महेश। मैत्रेय केवल विदुर के सामने बोले, कृष्ण केवल अर्जुन के सामने बोले, उद्धव के सामने बोले। क्यों? क्योंकि भीड़ में क्या हो सकता है? ध्यान वहाँ नहीं हो सकता – बे–ध्यान के सामने ध्यान की बात करने को मैं आध्यात्मिक अपराध कहती हूँ। ज्ञान का अपमान कहती हूँ। ज्ञान सम्मान के लिए हैं, जागने के लिए है, बाज़ारू बना देने के लिए है। वह बाज़ारू बन भी नहीं सकता परंतु कुछ लोग कथा का संपुट दे देकर ऐसा मिथ्या प्रयास कर रहे हैं। परंतु आज की भीड़ में सुत और शौनकादि का भाव कहाँ? ऐसी समझ कहाँ? ऐसा संकल्प कहाँ? ऐसा अनुशासन कहाँ? इतना धैर्य कहाँ? इतना प्रेम, त्याग, तप, समर्पण और शिष्यभाव कहाँ? आज तो धन प्रदर्शन है, ज्ञानदर्शन नहीं।

भगवान बुद्ध आनंद को स्पष्ट कहते हैं कि आनंद! शिष्य को शास्ता भगा भी दे तो भी शास्ता का अनुसरण करना चाहिए? और आनंद जवाब देता है कि भन्ते! भगवान (शास्ता) हमारे धर्म के मूल हैं, शास्ता अवलम्बन (आधार) है, हमारा प्रतिशरण है, हमें उसके अनुशासन में रहना है।

बुद्ध आगे संबोधन करते हुए कहते हैं कि हे आनंद! विमुक्ति–ज्ञान–दर्शन प्रकार की कथा के लिए शास्ता का अनुसरण करना चाहिए। व्याकरण के भेद वाले उपदेशों का अथवा गाने का अनुसरण नहीं करना चाहिए।

प्रिय साधको!

आज क्या हो रहा है? कथाकार की गाने की कैसेट घिसी जाती है और घिसीपिटी बातें लोगों के माथे मारी जाती हैं। क्या करें ऐसी कथाएं करके? लोग भी बासी खिचड़ी खाने के आदि हो गए हैं। मैं नया कुछ तरोताज़ा देती हूँ तो मेहफिल में बैठे हुए बेहोश शराबी की भांति लोग कथाकारों के घिसे पिटे कथनों की फरमाइश करते हैं। ऐसे माहोल को छोड़ने में ही मेरा और कुछ समझदार लोगों का कल्याण है।

अ-जिज्ञासु और अ-मुमुक्षु लोग जो फालतू प्रश्न लेकर आते हैं और उनके प्रश्नों का जवाब देने की जिस आचार्य को खुजली उठती है और पूछने वाला बेहोशी में कुछ भी पूछ सकता है और कहने वाला अपनी कच्ची समझ से कुछ भी जवाब दे देता है और क्षणभर के लिए दोनों खुश रहते हैं। ऐसे कार्य को बुद्ध आचार्य उपद्रव कहते हैं। अंतिम १०० साल में ऐसा आचार्य उपद्रव खूब हुआ है। मैं तो कहती हूँ कि शास्ता को सुनने की पूरी पूरी पात्रता जबतक विकसित नहीं हो तब तक श्रोता या शिष्य को प्रश्न करने का अधिकार ही नहीं देना चाहिए। और मैंने देखा है कि सुपात्र शिष्य समग्रता से और धैर्य से अगर शास्ता को सुनता है तो उनके सारे प्रश्नों का स्वतः समाधान प्राप्त हो जाता है। परंतु आज तो सबको बौधिक स्तर पर कसरत करनी है और करानी है। मैं कहती हूँ किसी तर्क शस्त्री के पास चले जाओ। मेरे पास मत आना, मैं आपके निरर्थक प्रश्नों के समाधान के लिए नहीं हूँ। परंतु सीधा परमोत्तर के लिए हूँ। और इसलिए दे रही हूँ, इतनी सारी ध्यान विधियाँ। मेरे पास अब कथा वार्ता की अपेक्षा मत करना।

बुद्ध ने कहा है कि ज्ञानी पुरुष राजाओं की कथा, दीन कथा, मनोरंजक कथा, ग्राम्य कथा, अनार्यों की कथा, अनर्थयुवन अथवा निर्वेद, वैराग्य, मनोशून्यता के लिए अनुपयोगी कथा अथवा समाधि, निर्वाण

आदि के लिए अयोग्य कथाओं को नहीं कहना। प्रबुद्धपुरुष तो मानस तप वाली, चित्त को संयमित करने में सहायक, सर्वथा शांति विराग समभाव और मोक्ष में उपयोगी, संम्बोधी और निर्वाण के योग्य, जैसे कि निर्लोभ कथा, संतोष कथा, प्रविवेक कथा, अ-संसर्ग कथा, आध्यात्म उद्योग की कथा, समाधि कथा, प्रज्ञा कथा, विमुक्ति कथा, तथा ज्ञानदर्शन कथा करता है।

प्यारे दोस्तो!

मैं कहती हूँ कि ध्यान विधियों में इन सारी उत्तम कथाओं का सहज समावेश हो जाता है। इसलिए गहन अनुभव के बाद मैंने व्यासासन को छोड़ा और ध्यानासन दृढ किया। क्योंकि सारी धर्म कथाओं का लक्ष्य है - शांति और आनंद में प्रवेश। मैं कहती हूँ कि एक छोटी सी ध्यान विधि जो पांच मिनिट में आपके भीतर चमत्कार कर सकती है तो फिर लंबी कथाओं की क्या जरूरत? और सत्संग तो संत के सानिध्य में मिलेगा, प्रोफ़ेशनल कथाकार के पास नहीं।

प्यारे साधको!

आपको लग सकता है कि ध्यान विधि की बात में मैंने और कई बातें कह दीं। परंतु ये सब जरूरी थीं। मेरे कहने का उद्देश्य इतना ही था कि आप मुझे मित्रवत सुने। विधि जानने के लिए उतावले होने से कोई खास फायदा नहीं होगा। आपका उतावलापन और मस्तिष्क के स्तर पर कुछ जान लेने की लालसा आपको ध्यानभ्रष्ट कर देगी, बे-ध्यान कर देगी क्योंकि उसमें प्रेम नहीं होगा। कुछ पा लेने का स्वार्थ होगा। याद रहे! ध्यान स्वार्थ के पार ले जाता है। ध्यान परम परमार्थ है। ध्यान स्वार्थ और परमार्थ दोनों धारणाओं से परे है। वह गणित नहीं कि 1+1 हो, वह तो समुद्र जैसा गहन है। वहाँ बूंद मोती बन सकता है। और अगर पात्रता नहीं तो बूंद सागर तक पहुंचते पहुंचते खत्म भी हो सकती

है। और बूंद सागर में मिलकर स्वयं रत्नागर भी बन जाती है। प्यार मेरा, अनुकम्पा मेरी, शक्तिपात मेरा, समर्पण और एकाग्रता आपकी। सौदा सस्ता है। परंतु रूपांतरण की बात है – जीवन की बाजी लगानी है। सूफिज़्म इसे फ़ना का फ़न कहता है। बुद्ध और शिव शून्य होने का और मैं इसे ध्यान के प्रेम में प्रवाहित हो जाना कहती हूँ। जैसे कि सांख्यशास्त्री कपिल की माता देवहूति अष्टांगयोग सुनती, सीखती और रूपांतरित होती हुई सिद्धिदा नदी बनकर बह गई। आपके साथ भी ऐसा हो सकता है। परंतु पहले आप तय कर लो कि एषणाएं तो नहीं बची हैं! मेरा काम ध्यान के नाम पर और बाबाओं की तरह सुख समृद्धि की लालच देना नहीं है। आशाएं, इच्छाएं, एषणाएं बढ़ रही हैं ऐसा आदमी शून्य में जाना क्यों चाहेगा? जो शून्य के बाद एक, दो, तीन की कड़ियाँ जोड़कर फिर एक से ज्यादा शून्य के लफ़ड़े लगाना चाहता है। लाखों के, अरबों के, खरबों के स्वप्न देखते हैं। वे लोग शेखचल्ली ही रहे परंतु सपने देखने से उसे कौन रोक सकता? मैं कहती हूँ कि ऐसे संसार के स्वप्न दृष्टाओं के लिए न मैं हूँ, न मेरा आश्रम, न मेरी ध्यान विधियाँ।

खास करके शून्यभाव की विधियाँ तो उस साधक के लिए हैं जिसने जान लिया है कि मैं शून्य से आया हूँ और पुनः सारी लीलाभूमि को समेटकर मुझे शून्य में समा जाना है। मुझे पता है कि करोडों में से एक विरल आत्मा शून्यभाव में जा सकता है अथवा ध्यान को उपलब्ध हो सकता है और इसलिए ही ये बातें मैंने पहले विस्तार से की ताकि आपके लिए अगर यह विधि नहीं है तो आप इसके लिए समय बरबाद न करो। हर विधि के पहले में साधक का चित्त टटोलती हूँ, उसे झकझोरती हूँ, जगाती हूँ, उसको आत्मनिरीक्षण और परिक्षण के लिए तैयार करती हूँ और साधक को उस कक्षा तक पहुंचाती हूँ कि वह ध्यानविधि के साथ कोई जल्दबाज़ी न करे और समझे कि इतना परिपक्व निर्णय ले पाए कि

यह विधि मेरे लिए है कि नहीं। नहीं है तो प्रमाणिकता से विधि से दूर रहे।

प्यारे साधको!

अब विधि सूत्र को ढंग से समझ लीजिए।

द्वादश में से कोई स्थान में, अथवा अन्य व्यक्ति वस्तुमें।
शून्यभाव से परम प्रकाशा, प्रगटे रहे न दुन्यवी आशा।।

प्यारे दोस्तो!

तंत्र शास्त्र में द्वादश स्थान का बहुत बड़ा महत्व है। संपुर्ण शरीर का और जीव का स्वस्थ अस्तित्व उन केन्द्रों से ही है। "ध्यान विज्ञान" में यह बातें मैंने विस्तार से बताई हैं। शिव द्वारा तंत्र शास्त्र में बताए हुए बारह स्थान अतिसूक्ष्म और वैज्ञानिक हैं। वहाँ किसी भी प्रकार की कल्पना को स्थान नहीं है। हाँ, वे स्थान परम सच्चाई हैं, वह कुदरती विज्ञान है, फिर भी वह एक राज़ है क्योंकि उन बारह स्थानों के साथ मनुष्य जन्मता है, मनुष्य मनुष्य के द्वारा ही जन्म लेता है, फिर भी हम नहीं कह सकते हैं कि मानव मानव सर्जित है। मानवपिंड भले दूसरे मानव पिंडों से आकार ले परंतु उस पिंड की रचना मनुष्य मनचाही नहीं कर सकता। वह तो गर्भ के अंधकार में किसी सूक्ष्म प्रकाश द्वारा आकरान्वित हो रही है। वही कुदरत का सबसे बड़ा रहस्य और करिश्मा है। अगर मनुष्य को सर्जन करना है वह पूरी तरह मनुष्य के हाथ में ही होता तो कोई अपने बच्चे की चार किडनी बनाना चाहता, तो कोई बीस हाथ और दस मस्तक!

हाँ, जिसे पांचवां वेद कहा गया है,; ऐसे आयुर्वेद में ग्रह नक्षत्र के अनुसार नर–नारी संतान प्राप्ति की विधि से गुजरे तो पुत्र अथवा पुत्री अथवा स्वरूपवान और गुणवान संतान प्राप्त करने की संभावनाएं हैं। परंतु आज के असंयमित मनुष्य के लिए यह सब बातें असंभव

जैसी हो गई हैं।

आज का मनुष्य सृष्टि कार्य को समागम को अथवा संभोग क्रिया को एक विधि की तरह नहीं परंतु केवल वासना की तरह लेता है। इस कारण तो संसार बंधन बन जाता है। संसार माया लगता है।

विज्ञान के आधार पर केवल सोनोग्राफी से गर्भ में लड़का ही या लड़की यह तो पांच मिनिट में जाना जा सकता है, तो सोचिए! महीनों तक ग्रह नक्षत्रों के अनुसार वेद में बताई हुई विधि के अनुसार ऋतु स्नान के बाद गर्भाधान की गहरी विधि में कौन उतरना चाहेगा! कभी कभी लगता है कि आज के विज्ञान ने मनुष्य को अ-आध्यात्मिक कर दिया है।

अपने स्वार्थ के लिए मूढ आदमी धार्मिक विधियों में उतर रहा है परंतु आत्मा के वास्तविक विज्ञान से दूर जा रहा है। अध्यात्म के विश्व को समझने का अर्थ है, - आंतरिक विज्ञान को अथवा चेतना के विज्ञान को जानना।

यह जाना जा सकता है परंतु वहाँ भी अध्यात्म के आलसी लोग रेडीमेड विधि चाहते हैं। मनुष्य पलायन करना चाहता है। टी.वी. में अगर कोई चालाक पंडित दो पांच लाख खर्चा कराके किसी नारी के गर्भ में विशेष आत्मा को उतारने की बातें करते हैं तो मनुष्य पैसों के ज़ोर से मन चाही चीजें पा लेना चाहता है।

परंतु याद रहे! अध्यात्म की पूंजी तो स्वयं को ही अर्जित करनी पड़ती है। धन देकर और धन कमाने की लालच से, कुछ पा लेने की चाह ही मूल में अध्यात्म विरोधी चाह है। अध्यात्म में तो प्राण फूंकने पड़ते हैं। छोड़ो, बात निकली तो कुछ कह दिया। अगर समझ जाओ तो आप भाग्यवान हो।

मैं कहना यह चाहती थी कि मनुष्य के शरीर में जो बारह ऊर्जा

स्थान हैं वह रहस्यमय ढंग से बने हैं। आधुनिक वैज्ञानिक मानस इसे रहस्य नहीं कहेगा। वह कहेगा कि ये तो हेरीडिटरी होता है! परंतु यह बिन्दु, यह केन्द्र आखिर हेरीडिटी में उतरे कैसे? आई कहाँ से ये शक्तियाँ? ये ऊर्जा कैसे उतरी आपके हाड–मांस के पिंड में? सर्वप्रथम किसने बनाए ये केन्द्र? – ये सारे प्रश्न ऋग्वेद के नासदीय सुक्त जैसे अनुत्तर अथवा गार्गी के प्रश्नों की तरह अति प्रश्न हैं। मनुष्य के पास इसका कोई प्रमाणिक जवाब नहीं है।

सांख्यमत से लेकर बौद्ध तक हजारों चिंतक इस विषय पर अपने अपने विचार दे चुके हैं। कपिल से लेकर कणाद और चार्वाक से लेकर आज के वैज्ञानिक तक अपना अपना मत थोप रहे हैं। परंतु एक वास्तविकता की ओर तो सबको इशारा करना पड़ा कि कोई अज्ञात शक्ति इस रहस्यमयी सृष्टि के पीछे काम कर रही है।

आज तक के कम्प्यूटर सोफ्टवेयर बनाने वाले अच्छे अच्छे कम्प्यूटरिस्टों ने कहा है कि हमारे बनाए हुए सोफ़्टवेयर में इतने हिडन कमांड हैं कि जिसे आज तक हम भी नहीं पकड़ पाए हैं।

वैसे भी पुराण में उल्लेख आता है कि यह सृष्टि ब्रह्मा ने बनाई परंतु जब नारद ब्रह्मा से पूछते हैं कि यह सृष्टि बनी कैसे? तब ब्रह्मा कहते हैं कि इन हिडन कमान्ड्स का मुझे भी पता नहीं है, चलो विष्णु से पूछें। फिर विष्णु को भी जब असमंजस में पाया तब ब्रह्मा और विष्णु दोनों शिव के पास जाकर यही प्रश्न पूछते हैं। शिव कहते हैं कि जो बन गया सो बन गया परंतु मुझे भी पता नहीं कि यह सबकुछ कैसे हुआ? चलो हम शक्ति के पास जाते हैं।

अंत में भुवनेश्वरी स्वरूप में जगदंबा तीनों देवों को उपदेश देती हुई कहती है कि यह सब मेरा रहस्य है। जगत में मैं ही सत्य हूँ, सनातन हूँ, सुधा स्वरूप हूँ, आदि, अनादि, अनन्त और अखंड हूँ।

सर्वखल्वमिदं सत्यं नान्यदस्ति सनातनं –

मेरे सिवाय यहाँ कुछ भी सनातन नहीं है। तब ब्रह्मा विष्णु महेश का तो समाधान हो गया और समझ गए कि शक्ति एक रहस्मयी तत्व है। उसका अनुभव हो सकता है वर्णन नहीं। परंतु आज के वैज्ञानिक इतने पहुंचे हुए, खोजी या सरल नहीं हैं। वे तो सबकुछ केवल पदार्थों में ढूँढते हैं। उनमें से कुछ तो इतने अहंकारी हैं कि पुराण की बात पर हँस देते हैं। और इतने मजबूर भी हैं कि पुराण की बात का उसे एक दूसरे ही भाषा और स्वरूप में स्वीकार भी करना पड़ता है।

अपनी भाषा में वे जिन्हें "प्रिंसीपल ऑफ एनर्जी" कहते हैं, वही पुराणों की शक्ति है। जिसकी वजह से इस जगत का अस्तित्व है। परंतु उन लोगों की हालात दयनीय है। पुराणों का स्वीकार करने में ख़ुद की पदार्थों को तोड़ तोड़ कर की हुई छानबीन की मेहनत छोटी पड़ जाती है। क्योंकि अगर पहले से ही स्वीकार कर लिया होता तो वैज्ञानिक बनने की जरूरत ही नहीं थी। सत्य की समझ आ जाती तो कौन करेगा इतनी मेहतन ?

अगर वे पहले से इस सत्य को समझ लेते तो सीधे आध्यात्मिक खोजी ज्ञानी, ध्यानी अथवा ऋषि बन जाते। परंतु वे भी स्वतंत्र हैं। उन्हें उस परिपाटी में नहीं जाना है। हरेक की अपनी एक पसंद होती है। वे अपनी स्वतंत्रता में काम करना चाहते हैं। पुराण का परम सत्य ही सिद्ध होता है पदार्थों के साथ, रसायणों के साथ, जिन्दगी भर सर फोड़ने के बाद भी।

परंतु उसमें उन्हें अपनी मौलिकता लगती है। एक प्रकार का संतोष होता है उसके मानस को। फिर भी उन्हें पुराण की बात को स्वीकार तो करना पड़ता है परंतु फर्क इतना है कि वे एनर्जी का स्वीकार करते हैं, अणु शक्ति का स्वीकार करते हैं परंतु आस्था के अभाव में वे

उसे देवी के रूप में स्वीकार नहीं कर सकते।

वे मानते हैं कि यह आविष्कार हमने किया है परंतु हकीकत में वह शक्ति वहाँ पहले से ही थी। उन लोगों ने तो प्रयोग किया और प्रयोग करते करते अकस्मात से कुछ सत्य हाथ लग गए। जिन्हें वे अपनी सिद्धी कहते हैं। मैं उसे पुनर्खोज कह सकती हूँ। कोई नई बात नहीं।

मैं कहती हूँ कि आज पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का सिद्धात न्यूटन के नाम पर चढ़ा हुआ है। वह भी एक अकस्मात है। वृक्ष पर से गिरते हुए सेब को धरती की ओर आता हुआ देखकर न्यूटन के मन में विचार आया कि यह फल नीचे ही क्यों आता है? ऊपर क्यों नहीं जाता? उसपर उसने थोड़ा ज्यादा विश्लेषण किया और वह विश्लेषण "द प्रिंसिपल ऑफ ग्रेविटेशन" के नाम से न्यूटन के नाम चढ़ा।

परंतु यह प्रिंसिपल हम न्यूटन का नहीं कह सकते। यह तो कुदरत का सिद्धांत था। आदमी अज्ञात था उस रहस्य से। मनुष्य ने निसर्ग के प्रति कभी इतनी सूक्ष्मता से ध्यान ही नहीं दिया था। हाँ, न्यूटन के चिंतन से मनुष्य को इतना पता चला कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति चीजों को अपनी ओर खींचती है। परंतु इसका अर्थ ऐसा नहीं है कि न्यूटन के बताने के पहले गुरुत्वाकर्षण शक्ति नहीं थी।

मैं कहती हूँ कि इस ब्रह्मांड में कुछ भी हो तो आश्चर्य मत समझना। वे सब सृष्टि के हिडन कमांड्स हैं। कभी भी कुछ भी हो सकता है। कोसमोस में ऐसा परिवर्तन भी आ सकता है कि कभी चीजें ऊपर की ओर जाने लगें और ऐसी इजाद भी एक दिन मनुष्य कर लेगा। परंतु आखिर एक ही जवाब आएगा – पावर, एनर्जी, ऊर्जा, शक्ति।

भारतीय मनीषि ज्यादा समझदार रहे हैं। उन्होंने उसे जननी के रूप में स्वाकारा है। शब्द अथवा किसी वैज्ञानिक आविष्कार के रूप में

नहीं। जिससे पूरा भाव बदल गया।

जननी का अर्थ है – जो नए नए को जन्म दे सकती है। वह नया कुछ भी, कैसा भी हो सकता है। कैसा होगा? इस राज़ को पूरी तरह से कोई नहीं जान पाता।

मैंने ऐसी घटनाएं भी सुनी हैं कि सोनोग्राफी रिपोर्ट में गर्भ में लड़का है ऐसा दिखाई दिया हो परंतु जन्म लड़की का हुआ। कैसे? मशीन या डॉक्टर की भूल भी नहीं थी। तो कैसे घटी यह घटना! मैं कहूँगी कि वहाँ एक अज्ञात, सूक्ष्म और अशरीरी जननी काम कर गई। किसी पावर ने अंतिम महीनों में बच्चे की जाति और नियति बदल दी। प्यारे साधको!

मैंने यह सब क्यों कहा? – इसलिए कि आपके शरीर के गुप्त शक्ति स्थानों से आप परिचित हों। उसकी उपासना करो। उसके प्रति लक्ष्य दो। उनके द्वारा आते हुए आदेशों को सुनो। और होते हुए परिवर्तनों को देखो। वह जानने के बाद ही आपको पता चलेगा कि आपका शरीर एक देवालय है और उसमें कई देवी–देवता (हिडन कमान्ड्स) बैठे हैं। आपने कभी उसके प्रति ध्यान नहीं दिया।

तंत्र शास्त्र उन शक्तियों के प्रति आपको बार बार जगाता है अर्थात उन सूक्ष्म शक्ति केन्द्रों के द्वारा आपको ध्यान के प्रति आने के लिए प्रेरित करते हैं। हाँ, शास्त्रों की भाषा ज़रा भिन्न और चमत्कृतिपूर्ण होती है इसलिए कभी–कभी अ–आध्यात्मिक मनुष्य को अतिश्योक्ति लगती है। परंतु शक्ति को प्रगट करना या देव को प्रसन्न करने का अर्थ सूक्ष्म है। वहाँ स्वयं की शक्ति को जगाने की ही बात है।

प्रतीकों की भाषा वैसे तो मनुष्य किसी भी बात को आसानी से समझ पाए इसलिए इस्तेमाल की जाती है परंतु भाषा के स्तर पर धीरे धीरे उसमें अतिश्योक्ति और चमत्कृति इतनी बढ़ गई कि उन प्रतीकों को

समझना आज के मनुष्य के लिए सबसे ज्यादा कठिन हो गया। और इसलिए मैंने अनेक ध्यान विधियों की बात बिलकुल आज की भाषा में करने की कोशिष की है।

संभव है कि हज़ार–दो हज़ार वर्ष के बाद यह भाषा भी मनुष्य को कठिन लगे। क्योंकि समय समय पर भाषा, संस्कृति, विचार आवश्यकता के अनुसार बदलते रहती हैं। तब इन्हीं शास्त्रों से कोई आध्यात्मिक ऊर्जा नए स्वरूप में, नई भाषा में, नए शास्त्र को जन्म दे पाएगी।

प्यारे साधको!

ध्यान विज्ञान ग्रंथ में मैं भले शरीर के शक्ति केन्द्रों के बारें में विस्तार से बता चुकी हूँ परंतु यहाँ वही बात बिलकुल दूसरे बिंदु पर समझनी है। उस वक्त जो बात हुई थी तब उन बिन्दुओं की शक्ति पर ध्यान केन्द्रित करना था। आज उन बिन्दुओं की बात हो रही है, उन केद्रों की हो रही है जो शक्ति के महास्रोत हैं और मानव शरीर को विविध प्रकार से सुचारू संचालन में अनिवार्य है।

वास्तव में वे बारह केन्द्र ही जीवन हैं। इन्द्रियाँ तो केवल उपकरण हैं, साधन मात्र हैं। परम सिद्धि तो केन्द्रों में छिपकर बैठी है जो सालों तक चुपचाप शरीर का संचालन करती है। वह शक्तियाँ शरीर को पावर देती हैं। और उस पावर से एक नया पावर भोजन और श्रम के सुमेल से मनुष्य शरीर में रीजनरेट होकर फिर से उन्हीं शक्तियों को पुष्ट करता है। यह एक ईश्वर के अजीबोग़रीब तमाशा है। उसे जान लेना और उसके पार चले जाना ही ईश्वरत्व है।

मैं कहती हूँ कि ध्यान आपका ईशत्व में प्रवेश करा सकता है। और शायद इसी वजह से जितने भी लोग ध्यान को उपलब्ध हो गए उन्हें दुनिया भगवान कहने लगी।

अब आईए विधि के विषय की ओर। हमारे शरीर के दिव्य शक्तिपूर्ण बाहर स्थान हैं। जैसे कि जन्माग्र, कंद, मूलाधार, नाभी, हृदय, कंठ, तालुमूल, भ्रूमध्य, ललाट, ब्रह्मरंध्र, शक्ति और व्यापिनी।

विधि कहती है कि इन बारह स्थानों में अथवा आपके सामने कोई अन्य व्यक्ति आए तो उस व्यक्ति में या किसी भी वस्तु की ओर मन भागे तो उसमें केवल शून्य का भाव करो। इस भाव की पराकाष्ठा में अंतर में परम प्रकाश प्रगटेगा और दुन्यवी आशाएं शून्य बन जाएंगी।

बात ज़रा समझने जैसी है। आज तक जिन जिन विधियों में शरीर के इन बारह स्थानों की बात आई है तब तब कुछ अलग भाव और अलग धारणा करने को बताया गया है। कभी प्राण की धारणा तो कभी प्रकाश की, कभी आकाश की तो कभी ऊर्जा की परंतु यहाँ एक विशेष बात है। इस विधि में बात अति पर पहुँच गई है।

मैं अति पर इसलिए कह रही हूँ कि पहले बताई गई विधियों में इन स्थानों की बहुत महिमा थी। इन स्थानों को समझने के लिए, इनकी सूक्ष्मता को समझने के लिए और इन स्थानों की मनुष्य के अस्तित्व में भूमिका समझने के लिए उन पर बहुत ज़ोर दिया गया था। सभी तंत्र शास्त्रियों ने दिया है। मैंने भी उसका महत्व बताया। परंतु इस विधि में तो केन्द्र से नहीं परंतु शक्ति से भी पार जाने की बात है।

अब आपको एक ऐसी अवस्था में जाना है कि शक्ति की भी आसक्ति नहीं। साधक का अस्तित्व पूर्ण रूप से अखिल अस्तित्व पर निर्भर। अब न मूलाधार से मूलबंध लगाना है ना कंठ से जालंधर बंध, नाभि स्थान से न कोई उड्डियान बंध लगान है, ना महाबंध। अब उन प्राणों के स्थान के साथ में ऐसे साक्षी बनना है कि साधक को अब उससे कुछ लेना देना ही नहीं। पहले की विधियों में शक्तियों का परिचय कराया। और अब कहते हैं कि उसके पार चले जाओ।

शिव कहना चाहते हैं कि शक्तियों के जागने से सिद्धियाँ बढ़ती हैं। सिद्धियाँ कभी कभी साधक की साधना को चौपट भी कर सकती हैं। साधक अध:पतित हो सकता है। हाँ, अगर पता चल गया कि सूक्ष्म केन्द्र क्या हैं? कैसे मदद करते हैं? उन केन्द्रों से कैसे काम लिया जाता है? उन केन्द्रों कि शक्ति क्या है? इतना अद्‌भुद देह पाया तो जीव जंतु की भांति नहीं मरना है।

दोस्तो, परंतु उस अद्‌भुदता को जान लेने के बाद क्या? साधक को खुद की शक्तियों से या अन्य से अभिभूत तो होना ही नहीं है। आखिर शक्ति भी कब तक? शरीर भी कब तक? सिद्धियाँ भी कब तक?

शून्यभाव ध्यान का अर्थ मैं कुछ यूँ करूंगी कि जीवन के अंत के पहले सजगता के साथ पाया हुआ अंत। मुक्ति के पहले मुक्ति। प्राप्ति के बाद समाप्ति। ज्ञान की दिप्ती आपको एक ऐसा प्रकाश देगी कि जहाँ आपको सत्य अपने स्पष्ट रूप में दिखाई दे और आपको उस सत्य के उजाले में दिखाई दे कि "कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी है वह शरीर में है।" और अंत में तो शरीर की वास्तविकता है – शून्यता।

इतना ही नहीं। जब स्वयं में ऐसी वास्तविकता का बोध जगेगा तब साथ साथ अन्य वस्तु अथवा व्यक्ति दिखाई दे अथवा उसका स्मरण हो उसमें भी यही भाव करो।

दो शरीर अथवा किसी भी पदार्थ की अंतिम वास्तविकता शून्य ही है। इस भाव से हर प्रकार की आस्रव (मन का मैल) धुल जाता है। यहाँ खास बात यह है कि जो खुद में देखना है वही अन्य वस्तु और व्यक्ति में भी देखना है।

दोस्तो! कभी कभी आभासी ज्ञान पैदा होता है। दु:खो के कारण क्षणिक वैराग्य भी प्रगटता है। कभी दिल को पहुंची हुई कोई ठेस आदमी

को सुन्न कर देती है। उदासी से भर देती है। ऐसी क्षणों में उसके लिए दुनिया निरर्थक हो जाती है। परंतु याद रहे, यह ज्ञानावस्था नहीं है।

दोस्तो! देवदास तो कोई भी बन सकता है परंतु यहाँ तो देवदास और पारो दोनों शून्य बन जाने चाहिए। तब वह उत्तम कोटि की उदासीनता है। जिसे निर्वेदावस्था कहते हैं। परंतु मन देवदास जैसा है; वह सुन्न हो जाता है परंतु पारो की भ्रमणा नहीं मिटती। पारो कल्पना में से नहीं हटती। आपकी जिन्दगी में ख़ुदा ना ख़ासता ऐसी क्षण आ जाए तो उसे शून्य ध्यान मत समझ लेना।

आदमी अकसर ऐसा करता है। कुछ लोगों को विधियों के कुछ ही अंश याद रह जाते हैं। और ज़िंदगी में आते जाते सुख-दुःख की बदलती परिस्थितियों में बदलती रहती मासिकता का मेल अपनी समझ के अनुसार ध्यान विधि के साथ मिलाकर उसे अनुभूति समझ लेते हैं।

मैं कहती हूँ कि कम से कम आपके साथ ऐसा मत होने देना। ध्यान के नाम से भ्रमित होने की जरूरत नहीं है। ज्यादातर लोग ध्यानविश्व में नहीं परंतु भ्रमविश्व में चलते रहते हैं। और भ्रमित करने वाले तथाकथित ध्यान-गुरू भी ध्यान के मार्केट में आसानी से मिलते हैं। इसलिए सावधान रहें।

विधि कहती है कि शरीर को आध्यात्मिक रूप से जान लिया, वैज्ञानिक रूप से जान लिया, शक्ति केन्द्रों को पहचाना और उसका आध्यात्मिक विकास में उपयोग भी किया। फिर भी पूर्ण अध्यात्म में तो आपका प्रवेश तभी ही होगा जब आप मिट जाओ। अर्थात अब न कोई आज्ञा चक्र की चिन्ता, न कुंडलिनी की, न अनाहत चक्र की फिक्र, न सहस्त्रदल कमल की, अब सारे केन्द्रों से संपर्क शून्य हो जाना है।

जब चेतना कहीं भी केन्द्रित नहीं रही वह केवल साक्षी बन गई फिर केन्द्रों से क्या लेना देना? शरीर के केन्द्रों में भले शक्ति संचार हो

परंतु इस विधि में साधक तीव्र भावना करता है कि अब मेरा उससे कुछ भी लेना देना नहीं है।

जिसमें केन्द्र बसे हैं, वह शरीर ही अस्थायी है तो फिर उस शरीर की सीमित शक्ति का मोह क्यों? अब शक्ति क्या – अशक्ति क्या? अब ज्ञान क्या – अज्ञान क्या? अव विषय क्या – निर्विषय क्या? जब मैं नहीं रहा तो तू भी नहीं। द्वैत और अद्वैत दोनों के पार की अवस्था है शून्यभाव।

हाँ, वैसे तो शून्य आधारित सभी ध्यान विधियों में घूमफिर कर शून्य पर ही आना है और शून्य में ही प्रवेश करना है परंतु फिर भी प्रत्येक विधि में धारणा में थोड़ा थोड़ा फर्क है। वह फर्क स्पष्ट रूप से दिखाई देने पर भी सूक्ष्म है। इसलिए मुझे थोड़ा विस्तार करना पड़ता है।

जब साधक देह के प्राण केन्द्रों में से आसक्ति हटाकर वहाँ केवल शून्य का भाव करता है उपरांत सामने आने वाले व्यक्ति अथवा वस्तु को भी शून्य रूप से ही देखता है अर्थात "नथिंगनेस" (कुछ भी नहीं) – यह भावना साधक को तुरंत ही परम प्रकाश का अनुभव कराती है। अर्थात अज्ञान के सारे आवरण गिर जाते हैं और दुन्यवी आशाएं समाप्त हो जाती हैं। फिर कोई बंधन नहीं। कोई आसक्ति नहीं, कोई भय नहीं, कोई भ्रम नहीं। मात्र एक जीवंत चेतना का अस्तित्व।

प्यारे साधको!

इसे नकार नहीं समझना। स्वयं को तुच्छ मान लिया, ऐसा भी नहीं है। विषय वस्तु के प्रति तिरस्कार भी नहीं है। यह तो है केवल एक दिव्य अवस्था। यहाँ "मैं" के लिए अहं के लिए अथवा लोभ और पीड़ा के लिए कोई जगह नहीं बचती। क्योंकि सब शून्य हो गया।

धारणा - 135

शब्द शून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 135

कोई शब्द को पूर्व अरु पाछे, शून्य भाव का ध्यान धरो तासे।
शून्य रूप बन जावे योगी, शून्याकार शिव महाभागी।।

ध्यान विधि - 135

किसी भी शब्द के पहले और बाद में जो शून्य (शांति) थी; उस पर ध्यान करके शून्याकार परम स्वरूप में प्रवेश कर लो।

यहाँ शब्दशून्य ध्यान विधि कह रही है कि शब्द भले आते जाते रहें परंतु आपको मन और बुद्धि के साथ नहीं जाना है। उसके अर्थ घटन में नहीं पड़ना है। आपको केवल शून्यता को ही लक्ष्य बनाना है। शब्द के अर्थघटनों में नहीं पड़ना है। शब्द पर सक्रिय होने के लिए मन को ऊर्जा नहीं देनी है। केवल शब्द के पहले और शब्द के बाद की शांति में प्रवेश बनाए रखना है।

प्रिय साधको!

कुदरत ने मन नाम की बड़ी अजीब चीज बनाई है। वह भी न सुलझाई जाए ऐसी एक पहेली है। उसे सुलझाते सुलझाते कई लोग उलझ जाते हैं। मन को सुलजाने के लिए विश्वामित्र तप में बैठता है और मेनका आ जाती है। शुक्राचार्य तप में बैठते हैं और इन्द्रकन्या जयंति आ जाती है। नर–नारायण बद्रिकाश्रम में तप करते हैं और सोलह हजार अप्सराएँ आ जाती हैं। नर नारायण उन अप्सराओं को अपनी सिद्धि दिखाने के लिए उर्वशी प्रगट करते हैं और अंजाने में अहंकार के कारण पुरर्जन्म के बंधन में फंसते हैं। योगी भरत मृगशावक की रक्षा में स्वयं अध्यात्म मार्ग से विचलित हो गए और मन के कारण मृग योनि में पैदा होना पड़ा। हमारे पुराणों में मन और माया को समझने के लिए ऐसे तो असंख्य उदाहरण हैं। कथाकारों के द्वारा पुराणों का व्यापारीकरण न हो और पुराणकथा केवल मनोरंजकता न बन जाए तो पुराणों का सत्य मनुष्य को जगाने के लिए एक सक्षम आधार है।

खैर! अब आईए विधि की ओर। शब्द शून्य विधि पढ़कर आपको लगेगा कि प्रथम विधि में पाँच ज्ञानेन्द्रियों की बात तो आ गई।

शब्द का संबंध श्रोत्रेन्द्रिय (कान) के साथ है, तो अब फिर से शब्द की बात क्यों?

प्यारे साधको!

मैं फिर से एक बार कहती हूँ कि तंत्र शास्त्र की कुछ विधियाँ और योगशास्त्र के प्राणायाम और आसन भी कभी कभी एक दूसरे से इतने निकट होते हैं कि साधक को ऐसा लगता है कि इन दोनों में कोई फर्क नहीं है। परंतु वास्तविकता में ऐसा नहीं होता। कभी कभी दो विधियों के बीच इतनी सूक्ष्म भेद रेखा होती है कि अगर उसे एक विशेष समझ और दृष्टि से देखी न जाए या समझी न जाए तो साधक चूक जाता है।

कुछ ध्यान विधियों में जैसे शब्दों में बिंदी का फर्क हो और अर्थ बदल जाता है, इतना सूक्ष्म फर्क होता है। केवल बिंदी मात्र से पूरी बात भाव, अर्थ और दृश्य बदल जाते हैं। जैसे कि कथा और कंथा। है तो एक बिंदी का फर्क। परंतु लोग कथा शब्द पर बिंदी लगा देंगे तो जंगल में रहने वाले साधु का वस्त्र जो टाट का बनता है और साधु उसे कमर पर लपेट लेते हैं ऐसा हो जाता है।

कच्छ के देवलिया गाँव के एक भक्त कभी भी कथा नहीं बोलते। कथा और कथाकारों की बात करते वक्त वे कंथा ही बोलते हैं। उनका नाम है हिम्मतभाई चावड़ा और वह बड़ी हिम्मत से और कोन्फीडन्स से "कंथा" बोलते हैं कि वह गलत शब्द बोल रहे हैं। परंतु सुनने वाले पीछे से बहुत मज़ाक उड़ाते हैं। मैं उसके मुंह पर कहती हूँ कि बेटा! तेरी कथा तो बिंदी वाली है, तू कंथा क्यों बोल रहा है? कथा बोला जाता है। आज वह बूढ़ा हो गया है परंतु अभी भी अपनी बात पर डटकर खड़ा है। और कहता है कि मुझे तो कंथा ही करानी है। वह बिंदी से समझता है कि कंथा शब्द से वज़न आता है। दोस्तों! समझ अपनी अपनी! क्या करें! छोड़ो।

मेरे कहने का हेतु यह है कि एक बिंदी मात्र से शब्द, अर्थ, दृश्य, भाव सब बदल जाता है। वैसे ही कई ध्यान विधियाँ ऐसी है कि जिसमें कोई खास फर्क नहीं दिखता फिर भी फर्क होता है। शून्य भाव से संलग्न ध्यान विधियों में पहले हमने पाँच ज्ञानेन्द्रियों को भ्रामक मानकर उसके रंगों के पार जाकर शून्य मान लेने की विधि पर चर्चा की। वहाँ बात ज्ञानेन्द्रिय पर ही अटक जाती थी। जब कान के स्थान शून्य का ही भाव दृढ़ हो गया तो फिर शब्द और शब्दों का अर्थघटन और फिर उसकी प्रतिक्रिया के लिए कोई गुंजाईश ही नहीं बचती। परंतु यहाँ शब्द के पहले और शब्द के बाद शून्य का भाव करना है।

इसका अर्थ यह हुआ कि पहले शून्यावकाश था। फिर किसी कारण से कान ने शब्द सुना। शब्द ध्वनित होकर शांत हो गया। अर्थात शब्द सुनने की पहले की शांति को क्षणिक स्मृति में रखकर फिर तुरंत शब्द सुन लेने के बाद की शांति (शून्य) में प्रवेश कर लो।

अब शायद आपकी समझ में आया होगा कि इस विधि का सीधा संबंध मन के साथ है। कान तो एक उपकरण मात्र है। जो शब्द ग्रहण करके भीतर देते हैं फिर मन और बुद्धि के द्वारा उसपर पिष्टपेषन होता है।

यहाँ शब्दशून्य ध्यान विधि कह रही है कि शब्द भले आते जाते रहें परंतु आपको मन और बुद्धि के साथ नहीं जाना है। उसके अर्थ घटन में नहीं पड़ना है। आपको केवल शून्यता को ही लक्ष्य बनाना है। शब्द के अर्थघटनों में नहीं पड़ना है। शब्द पर सक्रिय होने के लिए मन को ऊर्जा नहीं देनी है। केवल शब्द के पहले और शब्द के बाद की शांति में प्रवेश बनाए रखना है।

जब शांति दुगुनी हो गई तो शब्द का असर क्षीण हो जाएगा। आप जब मन और बुद्धि की ओर अपनी इच्छा से लक्ष्य देंगे ही नहीं, उसे

ऊर्जा ही नहीं मिलेगी, उसे कार्यान्वित होने ही नहीं देंगे तो फिर शब्द उत्पन्न होने के बाद भी, ध्वनित होने के बाद भी, उसे सुनने के बाद भी, सुनने की प्रक्रिया अथवा प्रतिक्रिय नहीं घटेगी।

क्योंकि शब्द केवल उपकरण तक पहुंचा। परंतु विधि में डूबी हुई आपकी चेतना ने उपकरण ने जो देना चाहा उसका स्वीकार ही नहीं किया। आपकी सजगता ने शब्द के पहले का शून्य (शांति) का स्मरण करके शब्द की उपेक्षा कर दी। और शब्द के बाद पुनः छाई हुई शांति को शब्द के पहले की शांति के साथ जोड़ा। अर्थात शब्द आया और गया परंतु आपको विक्षिप्त नहीं कर पाया। आपने अपनी शांति के साथ का अनुसंधान नहीं तोड़ा। आपने अपना स्थिरत्व नहीं खोया। जिससे शून्य भाव बड़ा बन गया और शब्द का प्रभाव शून्य बन गया। शब्द असफल रहा, नि:शब्द की शून्यता सर्वोपरि रही।

हाँ! वैसे तो कई लोग दुनियां में ऐसे हैं जो आपकी बात में हाँ जी, हाँ जी करते रहते हैं। और बात उसके भीतर तक जाती ही नहीं। उसका मन किसी और बात में भटकता है। आप घंटों तक ठगे जाते हो और मान लेते हो कि कोई आपको सुन रहा है। और आपको ठगने वाला भी ठगा जा रहा है उसके मन के द्वारा।

क्योंकि उसने आपकी बात में ध्यान नहीं दिया। इसका अर्थ यह नहीं था कि ऐसे लोग शब्द शून्य ध्यान कर रहे थे। उनका मन उन्हें दूसरे विचार, विषय और वस्तु में उलझा रहा था। तो ठगाई की परंपरा चली। आपको सुनने वाले ने ठगा, और बे-ध्यान रहकर भी प्यार से सुन रहा है, ऐसा दिखावा करने वाले को उसके दांभिक मन ने ठगा।

आज के समाज में ऐसी मानसिक ठगाई की एक लंबी परम्परा दिन रात चलती रहती है। योगी भर्तृहरि की जीवन कहानी की भांति। एक का चित्त दूसरे में, दूसरे का चित्त तीसरे में, तीसरे का चित्त चौथे में।

चित्त शून्यता अथवा अमनी अवस्था तो कहीं भी नहीं है। छोटी सी यह बात मैंने इसलिए बताई कि आप सजग बनो। पहले स्वयं को जानो पहचानो, खुद में बैठे हुए ठग को भी जानो। आप किसी को ठग भी रहे हो और खुद ठगे भी जा रहे हो। फिर भी अपने को होशियार, सयाने तथा व्यवहारू समझते हो। यह कैसी घृष्टता है! इस कटु सत्य को भी समझ लो।

किसी के प्रति दुर्लक्ष्य रहकर भी हाँ जी, हाँ जी से आश्वासन और रिस्पोन्स देने का नाटक करके आप सामाजिक, मानसिक और नैतिक अपराध कर रहे हो। आप जब इस सत्य को जान पाएंगे तभी सच्ची नि:शब्दता में उतर पाएंगे।

शब्दशून्यता का अर्थ है, चित्त का शब्दों के लिए साक्षी रहकर अर्थात शब्दों के भाव और अर्थ के साथ न बहकर शब्द के पूर्व की और शब्द के बाद की जो आपकी शांति थी, जो शून्यता थी उसमें स्थिर रहना।

प्रिय साधको!

यह ध्यान भी इतना आसान नहीं है। दोस्तो, मैं आपको डरा नहीं रही हूँ परंतु आपको साधना की गहराईयों में उतरने के लिए तैयार कर रही हूँ। कुछ विधियाँ साधक के लिए चेलेंज जैसी होती हैं। परंतु यहाँ चेलेन्ज उठाने के भाव से काम नहीं चलेगा। दोस्तो, ध्यान किसी शर्त से नहीं समग्रता से होता है। वह प्रेम जैसा है। लक्ष्य जितना गहन बनेगा, उतनी गहराईयों में आप डूबते जाएंगे।

कहने का हेतु सिर्फ इतना ही है कि परिस्थितियों के लिए इन्द्रियों को दोष मत दो। वह अनुचित चेष्टा है। इन्द्रियाँ तो बेचारी उपकरण हैं। उनका अपना कोई काबू उनके हाथों में नहीं है। उनका कन्ट्रोल तो आपके हाथों में है। आपका अर्थ यहाँ आपकी चेतना को समझ लो, आपका अर्थ

है आपकी समझ, आपकी आत्मसत्ता, आपकी सजगता।

परंतु जब आप उन सबका विस्मरण करके स्वयं को केवल एक व्यक्ति अथवा शरीर ही मान लेते हो तब समझ लो कि आपको वास्तविकता का विस्मरण हो गया है।

मेरी दृष्टि से सत्य का विस्मरण ही पाप को जन्म देता है। पुराणों में वर्णित असंख्य प्रकार के पाप और उनके फलों के वर्णन से और नर्कों से मेरा कुछ लेना देना नहीं है। हो सकता है कि मेरा यह अभिप्राय वेदव्यास या किसी भी अन्य व्यास से न मिले। किसी भी शास्त्र और पुराण में से ऐसा निवेदन न ढूँढ पाओ। परंतु इससे भी मेरा कोई लेना देना नहीं है।

मेरा काम आपको अधर्म करते हुए रोकने का नहीं है। परंतु आपका सीधा सीधा परम धर्म में प्रवेश करना है। जो धर्म, किसी शिखर, ध्वजा, छाप, तिलक, लिबास या संप्रदाय से नहीं जुड़ा है परंतु सीधा ही मनुष्य की शांति और आत्मसुख से जुड़ा है और उस परम धर्म को मैं कहती हूँ, ध्यान।

जिस क्षण आप आत्मविस्मृति में होते हो तब साधारण व्यक्ति जैसा व्यवहार करने लगते हो। साधारण व्यवहार करना कोई खराब काम नहीं है परंतु आज साधारण मनुष्य की व्याख्या बहुत बदल गई है। साधारण होने का अर्थ आज सहज, सरल, स्पष्ट और वास्तविक नहीं परंतु चीप, सस्ता अथवा चालू या थर्डक्लास हो गया है।

आत्मविस्मृति की क्षण में मनुष्य स्वार्थी, परपीड़न करने वाला, मूढ, अथवा अधम जैसा आचरण करने लगता है। और मैं कहती हूँ कि ऐसी मानसिकता पाप को जन्म देती है। क्योंकि तब उसका खुद का काबू खुद पर नहीं होता। उसकी सारी स्विचिस (बटन) मन के हाथों में होती हैं और मन तो पागल है। वह आत्मघात या पराघत कुछ भी कर

सकता है। इसलिए तो ऋषिओं ने मन को मर्कट कहा है।

शास्त्रों में कई जगहों पर मन को पागल हाथी की उपमा भी दी है। उसे केवल अपनी शक्तियों का पता है परंतु उन शक्तियों का कैसे और कहाँ इस्तेमाल करना या नहीं करना इस बात का बोध नहीं है। तो वह कुछ भी कर देता है। बेचारी इन्द्रियाँ निमित्त बन जाती हैं और अंधाधुंध कुशासन तो मन ने फैलाया होता है।

प्यारे साधको!

यहाँ ध्यान विधि की सूक्ति पढ़कर आपको लगेगा कि शब्द की बात हो रही है। शब्द के पहले और बाद में शून्य भाव में प्रवेश करना है। कुछ सुनना नहीं है अथवा शब्द के प्रति मूढ बन जाना है – ऐसा अर्थ मत करना।

यह विधि सीधी मनुष्य के मन के साथ जुड़ी है। शब्द मनुष्य को बहुत जल्दी हकार या नकार में उकसा सकता है। चमड़ी को तो स्पर्श की आवश्यकता है, आँखों के सामने दृश्य आना चाहिए परंतु शब्द तो दूर से ही अपना करिश्मा दिखा सकता है।

किसीके शब्द पत्र द्वारा, किसीके शब्द इन्टरनेट चिट्ठी द्वारा, किसीके शब्द रेडिओ से, सी.डी. से, केसेट्स से या वीडियो से अथवा अन्य किसीको भी माध्यम बनाकर रूप बदलकर भी आ सकता है।

फिर मन इस शब्द पर सक्रिय होता है। मान लो कि पहले एक व्यक्ति शांत और मौन बैठा है। एक ही शब्द ने उसको बहका दिया ज्यादातर तो ऐसा ही होता है कि मनुष्य फालतू बातों को भी ज्यादा महत्व देकर मानसिक दुख मोल लेता है। किसी लड़की या लड़के ने सहजता में कुछ कह दिये तो शब्दों को पकड़कर लड़का या लड़की दिवा स्वप्न में राचने लगता है। या वन-वे लव करने लगता है। शब्द बोलने वाले को तो पता ही नहीं था कि इतना गंभीर असर आ सकता था।

दोस्तो! शब्द मारक है, शब्द तारक है, शब्द उद्धारक है, शब्द अवनति भी है और उन्नति भी। शब्द ब्रह्म है। और ब्रह्म के तो अनेक रूप होने पर भी निर्गुण है – बस इतना ही याद रखना। यह मन की दवाई है, मन का इलाज है, समझ की कुंजी है। शब्द सबकुछ होने पर भी कुछ नहीं है। जो कुछ भी परिणाम दिखते हैं, वे मन के कारण हैं।

एक बार बुद्ध की सभा में एक आदमी झुंझलाता हुआ आया और बुद्ध पर थूका। बुद्ध ने एक वस्त्र से गंदगी साफ कर दी। और फिर धीरे से पूछा कि कुछ और कहना है? उस क्षण तो वह आदमी चला गया परंतु दूसरे दिन आया और बुद्ध के पैर पकड़कर कहा कि मुझे माफ़ कीजिए। कुछ लोगों के द्वारा उकसाने पर मुझे आप पर बहुत क्रोध आ गया था। वास्तव में आप पर थूकना वह मेरे अपशब्दों को कहने का एक ढंग ही था। मैं आपको बहुत बुरे शब्द कहना चाहता था परंतु मेरे क्रोध का विरेचन इस प्रकार से हुआ। मुझे आशा थी कि आप क्रोधित होंगे, आपके शिष्य मुझे पकड़ेंगे, मारेंगे परंतु आपने तो कहा कि और कुछ कहना है? तब मुझे आपके संतत्व का अनुभव हुआ, मुझे क्षमा कीजिए।

बुद्ध ने कहा, कि सुन! माफ़ी का तो सवाल ही नहीं उठता। क्योंकि तूने मेरा कुछ बिगाड़ा हो तो माफ करने की बात आती है। मुझे न कुछ बुरा लगा है, न दुख पहुंचा है। न मेरा कुछ बुरा हो पाया है। बात रही तेरे क्रोध की, अगर तुझे लग रहा है कि वह गलत है तो दूसरों के साथ ऐसा मत करना।

यह अवस्था है मनोविजय की, यह कला है मन के पार जाने की, यह है ध्यान का परिणाम। यह है स्व पर स्व की सत्ता। यह है सही ज्ञानावस्था, स्थितप्रज्ञता, प्रबुद्धत्व कुछ भी कह लो।

दोस्तो! विधि की मूल बात इतनी ही है कि किसी भी शब्द के पहले की शांति को शब्द सुनने के बाद भी बरकरार रखो। अर्थात मन

को शब्द के साथ मत जोड़ो। मन को उकसने का मौका मत देना। मन का अनुसंधान मत करना। मन के अर्थघटन में नहीं पड़ना।

शब्द के पहले और बाद की शून्यता इतनी गहन बनाओ कि शब्द स्वयं शून्य बन जाए। अगर कुछ बचे तो केवल शून्य, ध्यान, शांति, स्थैर्य और आत्मस्थता।

प्रिय साधको!

यह प्रयोग एकांत में नहीं हो पाएगा। यह ध्यान कमरा बंद करके नहीं होगा। यह विधि तो विपरीत से विपरीत परिस्थिति में अच्छे से अच्छी तरह दृढ हो जाएगी। विपरीत प्रकृति के लोग, विपरीत माहौल और आपत्त काल में ही आपके ध्यान की कसौटी है। आपके ध्यानी होने का मापदंड ही यही है।

चारों ओर से निंदा, अफवाएं, नफरत, और गालियाँ बरस रही हों और आप उन अप्रिय शब्दों की पूर्व और बाद में शून्य भाव ध्यान करते रहो तब आप स्वयं शून्य रूप बन जाएंगे, खो जाएंगे, शून्याकार शिवत्व में आपका प्रवेश हो जाएगा।

भारतीय परंपरागत धार्मिक मानस और पुरुष प्रधान धर्मसत्ता, राष्ट्रसत्ता के साथ काम करते करते अनेक बार कुछ नासमझ लोगों ने मुझे उनके तीक्ष्ण शब्दतीरों का निशाना बनाने का प्रयास किया। तब मेरे लिए यह ध्यान विधि आधार बन रही थी। जब यह ध्यान करते करते योगी शून्य रूप बन जाता है अर्थात खो जाता है तो फिर शब्द किसको लागू होगा! किसपर आएगा उसका असर! कौन होगा दु:खी या सुखी!

प्यारे साधको!

और क्या कहूँ? इससे आगे कहने को कुछ भी नहीं है। और यह कहने की बात भी नहीं है। अगर आपने इस विधि में प्रवेश कर लिया तो न कुछ होकर भी आप सबकुछ बन जाएंगे। ब्रह्म ब्रह्म में समा जाएगा।

व्याख्याएं शून्य में, शब्द महाशून्य में और साधक शून्यातिशून्य दशा में। इससे अच्छा क्या हो सकता है?

धारणा - 136

विश्वशून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 136

निज शरीर सह सर्व दिशा में, शून्य भाव रहे दिन निशा में।
सर्व शून्य बिनु क्रम से ध्यावही, साधक एक चित्त हो जावही।।

ध्यान विधि - 136

अपने शरीर सहित सर्व
दिशा में अ-क्रम रूप से
केवल शून्य का भाव
करके एकचित्त हो जाओ।

मैं नहीं चाहती हूँ कि मेरे द्वारा प्रशस्त और निर्दिष्ट किया हुआ ध्यान मार्ग और विधियाँ कोई पंथ या संप्रदाय बनकर रह जाए। मैं यह भी नहीं चाहती हूँ कि ध्यान के नाम पर कुछ चालाक लोग वर्तमान मनुष्य की समस्याओं का फायदा उठाकर रोटी सेकने लगें। मैं यह भी नहीं चाहती हूँ कि मेरे नाम के मंदिर या धर्म स्थान बढ़ें। मैं सिर्फ इतना चाहती हूँ कि मनुष्य अपने देहरूपी मंदिर में बैठे हुए ज्ञान, शांति, संतोष और आनंद रूपी परमात्मा से घनिष्टता बनाए रखे और संभव हो तो दूसरों को इस अवस्था की ओर मोड़ने के लिए जगाते रहें।

प्रिय साधको!

शून्यभाव से संलग्न होने पर भी यह विधि एक विशेष धारणा की ओर ले जा रही है। तंत्र शास्त्र और ज्ञान सूत्रों की गूढार्थ को ही ग्रहण करना चाहिए। वह गूढार्थ ही ज्ञानार्थ है। उसमें छिपा हुआ गूढ तत्व ही अगर समझ में आ जाए तो ज्ञान को उपलब्ध करा देता है। परंतु मैं आपको इतना जरूर चेताऊंगी कि मेरी दी हुई ज्ञान सुक्तियों में छिपे हुए गूढार्थ को समझने के लिए आपके पास गहन अध्ययन अथवा इस संदर्भ की कुछ समझ अथवा स्वयं की एक विशेष दृष्टि अथाव मार्गदर्शक या गुरू का सहयोग अनिवार्य है।

अगर आपके पास इनमें से कुछ भी नहीं है तो आप शायद ध्यान सूक्ति को गलत अर्थ में ले लकते हैं। मेरे कहने का उद्देश्य कुछ और हो और आप कुछ और ही समझ लें ऐसा हो सकता है। गलत अर्थ के कारण आप विधि के नाम पर गलत ही कर लेते हैं और गलत को आगे बढ़ाते हैं। ऐसा हो इससे तो कुछ न हो यह ज्यादा अच्छा है क्योंकि विश्व के धर्म शास्त्रों के साथ ऐसा बहुत हो चुका है।

संभव है कि मुमुक्षा, रस, और गहन साधना से शायद आपको

आत्मदृष्टि और स्पष्ट अर्थ स्वयं के अनुभव के द्वारा प्राप्त हो जाएं। परंतु ऐसा हरेक के साथ नहीं होता। कभी कभी सच्चे हीरे-जवेरात की पहचाने की शिक्षा के अभाव में जिंदगीभर आदमी रंग-बिरंगे पत्थरों को ही मून्यवान रत्न मानकर इकट्ठे करता रहे।

खैर! यह बात करना इसलिए जरूरी था कि अगर इतनी चर्चा नहीं होती तो संभव है कि कुछ लोग केवल सुक्तियों को रट लें और मन गढंत अर्थ लगाकर ध्यान के नाम पर कुछ और ही गड़बड़ खड़ी कर दें।

मैं नहीं चाहती हूँ कि मेरे द्वारा प्रशस्त और निर्दिष्ट किया हुआ ध्यान मार्ग और विधियाँ कोई पंथ या संप्रदाय बनकर रह जाए। मैं यह भी नहीं चाहती हूँ कि ध्यान के नाम पर कुछ चालाक लोग वर्तमान मनुष्य की समस्याओं का फायदा उठाकर रोटी सेकने लगें। मैं यह भी नहीं चाहती हूँ कि मेरे नाम के मंदिर या धर्म स्थान बढ़ें। मैं सिर्फ इतना चाहती हूँ कि मनुष्य अपने देहरूपी मंदिर में बैठे हुए ज्ञान, शांति, संतोष और आनंद रूपी परमात्मा से घनिष्टता बनाए रखे और संभव हो तो दूसरों को इस अवस्था की ओर मोड़ने के लिए जगाते रहें।

मैं समाज में रट्टू तोतों को पैदा नहीं करना चाहती। मैं एक समझदार मनुष्य को देखना चाहती हूँ। जो मेरी छोटी छोटी ध्यान सुक्तियों को याद कर ले। इतना ही नहीं परंतु उसके गूढत्व का भी स्मरण रखे और इस तरह दूसरों का भी पथदर्शक बने। बाकी आपने देखा होगा कि समाज में हर रोज "यह सतबार पाठ कर कोई" - की बोल बाला है।

हर रोज एक बार सात बार या सौ बार हनुमान चालिसा के पाठ करने वालों में से हनुमान जैसा एक ध्यानी भक्त ढूंढना भी मुश्किल है। ज्यादातर लोग तो "भूत पिशाच निकट नहीं आवे" इसलिए डर के मारे पाठ करते हैं। कोई ग्रह पीड़ा के भय से, तो कोई अपराध भाव से।

हनुमान चालिसा का पाठ करने वालों में से कितने हैं वीर!

धीर! योद्धा! आत्मनिष्ठ! आत्मसंयमित! आत्मविजयी! ज्ञानी! बुद्धिमानों में वरिष्ठ! शक्ति और फुर्तिवान! जितेन्द्रीय! धर्मदूत! उत्तम संदेशावाहक! और श्रेष्ठ सचिव... ?

रामायण में एक कथा आती है। एक बार राम हनुमान को प्रसन्न होकर कुछ मांगने के लिए कहते हैं। तब हनुमान कहते हैं कि वास्तव में आप मुझपर प्रसन्न हैं तो आपकी शक्ति के साथ मेरे हृदय में वास करो। इसका अर्थ में कुछ यूं करती हूँ कि फिर वासनाओं के लिए कोई स्थान न बचे। राम के वास का अर्थ है हृदय में सच्चिदानंद का वास, ज्ञान का वास, सहज त्याग का वास, वितराग का वास, साक्षित्व का वास।

परंतु आज सुंदरकांड गाने वाले और शनिवार को हनुमान मंदिर पर लाईन में खड़े रहने वाले को हनुमान जी अगर प्रसन्न होकर पूछेंगे कि आपको क्या क्या चाहिए? तो ??????? बेचारे हनुमानजी पवन वेग से भाग जाएंगे। वे कहेंगे कि यह तो मेरे विषय के बाहर की बातें हैं।

प्रिय साधको!

हमारे धर्मों के साथ, शास्त्रों के साथ, भगवानों के साथ, देवी देवताओं के साथ बरसों से यह होता आ रहा है। और ऐसे खेल सिखाने वाले हैं, निर्मलता का मुखौटा पहने हुए मलीन मन के बाबा लोग। इसलिए मुझे आपको बार बार जगाना पड़ता है। कि आप भी कभी ऐसी मूढ कतार या भीड़ का हिस्सा न बन जाओ। अगर आपके मन में दुन्यवी आशाओं को पूरा करने का दूर दूर भी कहीं इरादा छिपा है तो मुझे अभी से छोड़ दो। मैं आपके लिए नहीं हूँ और आप ध्यान के लिए नहीं हैं।

अब आइए धारणा की ओर। धारणा कहती है कि अपने शरीर सहित सर्व दिशा में दिवस-रात एक के बाद एक ऐसी क्रमशः शून्यता में

जाने की विधि के बिना, जो कुछ भी है उसका शून्य के रूप में ध्यान करके साधक एक चित्त हो सकता है।

इस विधि में "दीन–निशा में"– यह वचन महत्वपूर्ण है। सामान्य रूप से रात्रि के समय शून्य भाव ध्यान करना आसान है। क्योंकि अंधकार से छाया हुआ विश्व तब दृष्टिगोचर नहीं होता। जिससे आँख के द्वारा मन को अनेकानेक विषयों में प्रवेश करने का मौका लगभग नहीं मिलता। परंतु दिन में प्रकाश के कारण आँख असंख्य चित्रों को खींचती रहती है। और मन को भेजती रहती है। दिन में वैसे भी मनुष्य का चेतन मन विशेष कार्यरत होता है। अपनी इच्छाएं एवं आवश्यकताएं पूरी करने के लिए भागता रहता मनुष्य जगा हुआ दिखने पर भी सजग नहीं होता। दिन में वह विशेष चेतनावान दिखने पर भी बे–ध्यान होता है। अगर मनुष्य सचेत होता तो इतने एक्सीडेन्ट, इतने झगड़े, टंटे–फिसाद, शोर–गुल, लफड़े और घोटाले कैसे कर सकता!

इसलिए तो वेदव्यास ने गीता में कहा है कि संयमी योगी सामान्य प्राणियों की जो रात्रि होती है उसमें जागता है। क्योंकि तब उसे माहौल मिलता है साधना का। साधना शांति चाहती है। स्वार्थ अशांति खड़ी करता है। मूढता आपको निद्रित रखना चाहती है और चेतना सजग।

मेरे कहने का हेतु यह है कि दिन में रात्रि से अनेक गुनी सजगता की, ध्यान की, एकाग्रता की और स्थिरता की आवश्यकता है। क्योंकि रात्रि में तो अंधकार और निद्रा दोनों की व्यवस्था है तो मनुष्य मन काफी चीजों से कुस्ती करने से बच जाता है। निद्रा में केवल चेतन मन की इच्छाएं अचेतन के कारण ज़ोर पकड़ के स्वप्न के रूप में स्खलित होती रहती हैं। और गाढ़ निद्रा में मन शांत रहता है, मूर्छित रहता है।

परंतु दिन में मनुष्य का मन ज्यादा सक्रिय हो जाता है क्योंकि

सारे द्वार खुले हैं। बेचारी खुली आंखें भटकती रहती हैं। परंतु उसके पास क्या देखना, क्या न देखना? इसका बोध नहीं है। न मनुष्य के पास इसका विवेक है।

प्यारे साधको!

ध्यान योग में उत्सुक साधकों को भी इन सारी बातों के लिए सजग रहना पड़ता है तो साधारण मनुष्य की बात क्या करें? परंतु मैं नहीं चाहती हूँ कि आप सामान्य बने रहें और इसलिए ही मैं इतनी ध्यानविधियाँ आपको विस्तार से देने का आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रही हूँ। बाकी विधि तो एकाध दो पंक्ति की सूक्ति में ही समा जाती है। परंतु इस गागर में भरे हुए सागर के सूक्ष्म स्वरूप का आप में बोध घटित हो जाए इतना मेरे लिए पर्याप्त है। फिर आप अंतर्मुखी बन जाओ, बहिर्मुखी बने रहो, मौन में चले जाओ, नाचो, गाओ या अन्य को भी ध्यान में उतरने के लिए सहायता करते रहो यह आपकी क्षमता और मर्जी की बात है।

मैं यह कहना चाहती हूँ कि इस ध्यान सूक्ति में दिन में और निशा में भी शून्यता का भाव करें। – इसका अर्थ यह है कि आपके सामने दिन में भले कितने भी दृश्य आएं परंतु निरंतर अभ्यासमय रहें कि उन सारे दृश्यों में आपको शून्यता का भाव ही करना है।

यह भाव ही आपको परम प्रकाश की ओर ले जाएगा। दिन और रात में बाहर के दृश्यों को आप बिलकुल अपनी चेतना, विचार या ऊर्जा नहीं देंगे। इतना ही नहीं परंतु जड़ चेतन सहित समग्र सृष्टि और स्वयं का शरीर भी अंत में तो शून्य ही है। इस सत्य को समझकर शून्यभाव ध्यान में निरत रहें।

यह ध्यान अध्यात्म की उच्चतम भूमिकाओं का ध्यान है। और अंत में एक भूमिका मुक्त अवस्था में प्रवेश करा देता है।

इस ध्यान को शिव अ-क्रम रूप से करने को कहते हैं। इसी बात को बुद्ध क्रमिक विकास के द्वारा उसके महासुञ्ञता सुत (महाशून्यता सूत्र) में आनन्द को अपने अनुभव को और शून्यध्यान साधना पद्धति को समझाने का एक सम्यक प्रयास किया है। जिसे मैं यहाँ आपको बता रही हूँ –

एक समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती नगरी में मृगार माता के महल में रुके हुए थे। तब आनंद सायंकाल में प्रतिसंल्लयन (ध्यान) में से उठकर बुद्ध भगवान के पास गए। और बुद्ध से कुछ प्रश्न करने की चेष्टा की; तब बुद्ध ने कहा कि है आनंद! मैं अधिकतर शून्यता विहार से विहरता हूँ।

आनंद ने कहा, यह मैं क्या सुन रहा हूँ? बूद्ध ने कहा – तूने ठीक ही सुना है। पहले भी और इस समय भी मैं अधिकतर शून्यता विहार से विहरता हूँ। जैसे (१) यह मृगार माता का प्रासाद, हाथी, गाय, घोड़े, सैनिक आदि से मेरे लिए शून्य हैं। (२) सोने, चांदी से शून्य हैं। (३) स्त्री-पुरुष के झमेले से शून्य हैं। परंतु केवल एक भिक्षु संघ से अशून्य नहीं; परंतु (४) भिक्षु ग्राम संज्ञा को मन में न कर, (५) मनुष्य संज्ञा को भी मन में न कर शून्य में विहार करने वाला एक (६) अरण्य संज्ञा को मन में करता है। अर्थात शून्य में विहार करने वाला साधक महल को और उसके वासियों को शून्य मानकर केवल अरण्य में विहार करता है ऐसा भाव करता है और इस भाव से उसका चित्त निर्बोध्य रहकर प्रसन्न रहता है। और फिर अनुभव करता है कि महल को लेकर जो पीड़ा थी वह नहीं है। चीजों को और खजानों को लेकर जो पीड़ा थी वह भी अब नहीं है, मनुष्यों को लेकर जो पीड़ा थी वह भी नहीं हैं। परंतु अभी भी अरण्य भाव की पीड़ा तो बची है। अरण्य भाव को लेकर अशून्यता है।

प्यारे साधको! इस प्रकार चित्त शून्यता योग में भगवान बुद्ध कहते हैं कि जो वहाँ नहीं होता उस भाव में प्रवेश कर जो होता है उसे साधक (ध्यानी) शून्य देखता है। और जो बाकी रहता है उसका होना मात्र है। इतना जानता है परंतु उस होने के साथ नहीं होता। इस प्रकार से धीरे धीरे साधक का प्रवेश अ-विपर्यस्त (जो मिथ्या नहीं है) अर्थात परम सत्य है - ऐसे परिशुद्ध शून्यता में प्रवेश होता है।

हे आनंद! फिर भिक्षु मनुष्य संज्ञा, अरण्य संज्ञा, आदि को मन में से हटाकर केवल पृथ्वी का भाव करता है। (७) एकमात्र पृथ्वी संज्ञा में भाव करते हुए भी भिक्षु पृथ्वी के ऊंचे-नीचे तट, नदी, घाट, खांड, कंटक स्थान, पर्वतादि की विषमता, सभी से पार जाकर केवल सपाट पृथ्वी का भाव करता है। तब भी पृथ्वी को लेकर जो दरथ (पीड़ा) तो है। क्योंकि अभी पृथ्वी की अशून्यता तो बची है। इस प्रकार जो वहाँ नहीं है ऐसी यथार्थ शून्यता में भिक्षु का प्रवेश होता है।

फिर हे आनंद! (८) भिक्षु पृथ्वी संज्ञा के पार जाकर केवल अंत रहित आकाश के स्थान के खयाल को करता है। जब आकाश स्थान में उसका चित्त ठहर जाता है अर्थात केवल आकाश का अस्तित्व ही रह जाता है तब पृथ्वी स्थान को लेकर जो अ-शून्य की पीड़ा थी वह तो गई परंतु अभी आकाश शून्य में प्रवेश नहीं हुआ। बाद में गहन स्थिरता के बाद आकाश का भाव भी छूटता है और यथार्थ शून्यता में प्रवेश होता जाता है। फिर (९) भिक्षु अंतरहित विज्ञान के आयतन में मन को स्थिर करता है। परंतु फिर भी अंतरहित विज्ञान भी शून्य नहीं हुआ अर्थात विज्ञान की अ-शून्यता। (१०) फिर भिक्षु उसके भी पार आकिंचन्य (नहीं कुछपन) अवस्था में मन स्थिर करता है। फिर (११) उससे पार जाकर नैवसंज्ञा अर्थात संज्ञा रहित अवस्था में मन का प्रवेश कराता है। फिर उससे भी पार जाकर केवल (१२) अनिमित्त (लिंग, जाति आदि

से रहित) चेत:समाधि में चित्त को स्थिर करता है। तब आकिंचन्यातन सज्ञा को लेकर जो अशून्यता की पीड़ा थी वह नहीं है और नेवसंज्ञा की अशून्यता को लेकर जो पीड़ा थी वह भी नहीं है। परंतु चेतः अर्थात चेतना अर्थात जीवन अर्थात जीवित होने के कारण इस छः आयतन वाली काया को लेकर पीड़ा तो है ही। इस प्रकार बोध जगाते-जगाते जो वहाँ नहीं है उसका भाव करके आगे के शून्यों में प्रवेश करना है। चेत:समाधि से आगे उठकर (१३) अनिमित्त चेतः समाधि में ठहरना है। परंतु ध्यानी जानता है कि यह अनिमित्त चेतः समाधि अभिसंस्कृत है। अर्थात जिसकी क्रिया का चिंतन किया जा सकता है। अभिसंस्कृत है, वह अनित्य है, नाशवान है, निरोधधर्मा है, ऐसा जानता है। (१४) ऐसा जानकर और देखकर उसका चित्त काम-आस्रवों अर्थात भोगेच्छा संबंधी चित्त कालुष्यों से मुक्त है। फिर जानता है कि (१५) भव-आस्रव अर्थात जन्मांतर की लालसरूपी आस्रव। फिर (१६) अविद्या आस्रव अर्थात अज्ञान से मुक्त होता है। इन सबसे मुक्त होने के बाद "विमुक्त हूँ" ऐसा ज्ञान होता है। अब आवागमन खत्म हो गया जो करना था सो कर लिया और यहाँ के लिए कुछ शेष नहीं रहा। अब भव-आस्रव ..... अविद्या आस्रव आदि को लेकर जो पीड़ा थी वह नहीं है। परंतु जीवन के अस्तित्व के कारण काया को लेकर तो पीड़ा है ही। काया को लेकर अभी अ-शून्यता है और फिर साधना की गहराई से जो वहाँ नहीं होता उससे उसे शून्य देखता है और फिर जो बाकी रहता है और जो विद्यमान रहता है उसे यह है ऐसा जानता है।

ऐसे हे आनन्द! यह यथार्थ परिशुद्ध परम अनुत्तर और सर्वोत्तम शून्यता में प्रवेश होता है। हे आनन्द! भूत भविष्य और वर्तमान में ऐसी परमानुत्तर शून्यता को प्राप्त करके कुछ श्रमण (शिष्य) विहरते रहे हैं। मैं भी इस परिशुद्ध परमानुत्तर शून्यता को प्राप्त करके विहरूँगी और यह

तुझे सीखना चाहिए।

प्रिय साधको!

शून्यभाव ध्यान में भले अनेक विधियाँ हों। जिसे शिव अपने ढंग से बुद्ध अपने ढंग से और मैं मेरे ढंग से समझा रही हूँ। परंतु बात स्थूल में से सूक्ष्म में, सूक्ष्म में से अतिसूक्ष्म में और अतिसूक्ष्म में से सूक्ष्म से भी पार जाकर "न कुछ" का भाव ही चित्त में बना रहे और साधक का सदेह परममुक्ति में प्रवेश हो, यही ध्येय है – जिसे शिव और पतंजलि एक चित्तवान कहते हैं। बुद्ध शून्यताविहार कहते हैं और मैं शून्यभावलीनता कहती हूँ। आप अपने अनुभव से और कुछ भी कह सकते हैं। परंतु मैं इतना ही चाहूँगी कि चलते फिरते सोते जागते आप आत्यंतिक अवस्था में विहरो और शून्यभाव से क्लेशमुक्ति का अनुभव करो।

धारणा - 137

देहशून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 137

निज शरीर में क्षण भर ध्यायो, केवल शून्य परम पद पाओ।।

ध्यान विधि - 137

अपने समस्त शरीर में केवल शून्य का ध्यान करके परम पद को प्राप्त कर लो।

यहाँ इस विधि में शरीर को वैज्ञानिक ढंग से समझना है। जो मनुष्य अपने शरीर को ढंग से समझ पाएगा, वही मनुष्य देह शून्य भाव में उतर पाएगा। मैं तो यह कहूँगी कि हकीकत में यह शरीर शून्य ही है। हो सकता है कि मेरी बात सुनकर आपको आश्चर्य हो परंतु अध्यात्म और विज्ञान भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

मैं यहां आधुनिक विज्ञान की सीमित बात नहीं कर रही हूँ। परंतु समग्र सृष्टि में छिपे हुए विज्ञान की बात कर रही हूँ। यह विज्ञान और अध्यात्म दोनों की भाषा भले अलग अलग हो परंतु एक ही सत्य को दोनों अपनी अपनी भाषा में कह रहे हैं।

प्रिय साधको!

सूक्ति बहुत छोटी है। विधि कहती है कि अपने शरीर में केवल शून्य का ध्यान करो और परम पद को प्राप्त कर लो।

सूक्ति को पढ़कर फिर से आपको कुछ पुनरार्वतन जैसा लग सकता है परंतु वास्तव में ऐसा कुछ नहीं है। शिव ने केवल शून्य को पकड़कर विभिन्न धारणाओं के स्वरूप में विभिन्न विधियों को दिया है तो इसके पीछे कोई रहस्य छिपा है।

यहाँ इस विधि में शरीर को वैज्ञानिक ढंग से समझना है। जो मनुष्य अपने शरीर को ढंग से समझ पाएगा, वही मनुष्य देह शून्य भाव में उतर पाएगा। मैं तो यह कहूँगी कि हकीकत में यह शरीर शून्य ही है। हो सकता है कि मेरी बात सुनकर आपको आश्चर्य हो परंतु अध्यात्म और विज्ञान भिन्न-भिन्न नहीं हैं।

मैं यहां आधुनिक विज्ञान की सीमित बात नहीं कर रही हूँ। परंतु समग्र सृष्टि में छिपे हुए विज्ञान की बात कर रही हूँ। यह विज्ञान और अध्यात्म दोनों की भाषा भले अलग अलग हो परंतु एक ही सत्य को दोनों अपनी अपनी भाषा में कह रहे हैं।

अध्यात्म कहता है कि शरीर नाश्वंत है अर्थात अंत में सब शून्य है। मतलब कि कुछ भी नहीं बचता। मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। और विज्ञान कहता है कि मृत्यु का अर्थ है डीकम्पोज़ीशन ऑफ बोडी अर्थात शरीर जो विविध पदार्थों के द्वारा इकट्ठा होकर एक नामधारी और रूपधारी आकार बना था वह फिर से बिखर गया।

इसलिए तो संत कहते हैं कि काया कांच की पुतली है। कोई मिट्टी का खिलौना कहते हैं तो कोई माटी का हुजरा। ज्ञानी लोग प्रभु की पोंगरी कहते हैं और मुमुक्षु चमड़ी की झोंपड़ी। लेकिन एक दिन ऐसा आता है कि जो खत्म हो जाता है, टूट जाता है, फूट जाता है, बिखर जाता है। वह ऐसे बिखरता है कि उसे फिर से जुड़ने की कोई संभावना आज तक तो विज्ञान नहीं ढूंढ पाया। आधुनिक विज्ञान कोई हड्डी पसली जोड़ लेता है वह ठीक है परंतु टूटी हुई सांस को जोड़ने का उसके पास कोई इलाज नहीं है। अगर वह कोई तरीका ढूंढ भी लेगा तो कुदरत उसे तोड़ने का नया तरीका आज़माएगी क्योंकि विज्ञान मनुष्य की खोज है। परंतु मनुष्य को तो कुदरत बनाता आया है।

मनुष्य पूरी कुदरत को कभी नहीं बना पाया। हाँ! वह निसर्ग के कुछ अंशों का विकास कर सकता है, जिसे आप पेड़-पौधे कह लो या हाईब्रिड की खोज परंतु हाईब्रिड में वह असलियत, वह कुदरती मिठास कहाँ से भरेगा आदमी। इसलिए हाईब्रिड चीजों को, पशुओं को अथवा भविष्य में हाईब्रिड मनुष्य भी बनेगा तो वह बनावटी होगा। जैसे बिना स्वाद के टमाटर, बिना सुवास के फूल ऐसे बिन मानवता का मनुष्य।

खैर! अब सूक्ति की ओर आईए। ध्यान सूक्ति कहती है कि अपने शरीर में क्षणभर ही केवल शून्यता का तीव्र भाव करने से साधक परमपद को प्राप्त हो जाता है। बात बिलकुल सही है। वैज्ञानिक तौर पर

सिद्ध करना तो बहुत आसान है। और जब मनुष्य को पता चल जाता है कि शरीर के भीतर अंतिम सत्य शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं तब यह सत्य ही अंतिम समझ को जगा देता है और मनुष्य सहज ही परम पद को प्राप्त करता है।

विज्ञान भी ज्ञान मार्ग की तरह प्रश्न उठाता जाता है कि फिर क्या? फिर क्या? फिर क्या? और विज्ञान का जवाब देना ज्ञान मार्गी प्रश्नों से आसान है। क्योंकि स्थूल पर चर्चा है। पदार्थ पर चर्चा है। पदार्थ के पार क्या? जवाब सीधा है – शून्य। पदार्थ के सबसे छोटे घटक को हम अणु कहते हैं और उससे छोटे घटक को परमाणु फिर उससे छोटे घटकों को इलोक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन फिर क्या? उससे छोटा कुछ भी नहीं। फिर उसका रूपांतरण एनर्जी में किया जा सकता है। वह एनर्जी कहाँ है? जवाब है – प्रत्येक स्थान पर, फिर भी शून्य में।

शरीर रचना और देहधर्म विद्या (एनाटॉमी एन्ड फिज्यॉलॉजी) की बात करें तो स्वस्थ शरीर की प्रत्येक सिस्टम के एक एक अवयव में उतरते जाएंगे और सूक्ष्मता से देखते जाएंगे तो अंत में शून्य ही मिलेगा। उदाहरण के तौर पर किसी भी तंत्र को ले लो। श्वशन तंत्र में नासिका से लेकर फ़ेफ़ड़ों तक क्या है? तो फीजियोलोजिस्ट कहेगा कि नासिकाएं, ट्रेकिया फिर ब्रोंकाई फिर फेफड़े फिर फेफड़े के गुब्बारे। परंतु गुब्बारों में क्या है? आधुनिक विज्ञान कहेगा कि हवा। और मैं कहूँगी, वहाँ खाली जगह है। और तंत्र की भाषा में कहें तो वहाँ शून्य अर्थात न कुछ है। तब तो वायु की आवन–जावन हो सकती है। शून्य के कारण ही तो फेफड़ों को आंकुचन और प्रसरण की प्रक्रिया घटित हो सकती है। भीतर घनता होती तो श्वसन क्रिया और जीवन दोनों असंभव बन जाता।

कभी कभी श्वशन नलिका में कफ भर जाता है तो डॉक्टर ट्यूब डालकर सिरिंज से उसमें भरा हुआ अनावश्यक कचरा निकाल कर जगह को साफ करते हैं। मतलब फिर से वहाँ शून्य का निर्माण करते हैं। यही तो है शून्य की महिमा।

आदमी कहता है कि मैं श्वास लेता हूँ परंतु केन्द्र में शून्य है "न कुछ है" वह शून्यावकाश न होता तो जरा सोचिए क्या होता?

रुधिराभिसरण तंत्र में नलिकाओं में खाली जगह है अर्थात वहाँ कुछ नहीं है। तब तो रक्त का वहन हो सकता है। पाचन तंत्र में मुंह से गुदाद्वार तक खाली जगह है इसलिए तो भोजन लेना, उसे पचाना और निरर्थक पदार्थ मल के रूप में बाहर निकाल देने की प्रक्रिया शरीर आसानी से कर सकता है। एलीमेन्ट्री केनाल में शून्य मार्ग में अगर कुछ भर जाता तब बीमारी, शस्त्र क्रिया या मृत्यु की नौबत आती है।

अस्थि तंत्र में क्या है? अस्थियों के बीच में खाली जगह है, तब तो उसमें बोनमैरो बन सकता है और उस खाली जगह की वजह से ही ब्लड कैंसर जैसे रोगों में पेशेन्ट का बोन मैरो ट्रांस्प्लांट किया जा सकता है परंतु अस्थियों के भीतर जगह ही नहीं होती तो??

प्यारे भक्तों!

कितने उदाहरण दूं! कान में शून्यता है इस कारण से तो हम सुन पाते हैं। आंख में भी कहीं शून्यता की व्यवस्था है इसलिए आँख दृश्यों को अपने में भर सकती है। न्यूरोन्स में भी कहीं सूक्ष्म जगह है इसलिए तो सेटेलाईट की भांति शरीर और दिमाग के बीच में संदेशा सेतु बराबर बना रहता है। नारी के गर्भाशय में शून्यता है, फेलोपियन ट्यूब्स में शून्यता है, ओवरीज़ में शून्यता है इसी वजह से तो बीज को फलित होने का मौका

मिलता है और वह गर्भाशय तक की यात्रा करके भ्रूण और भ्रूण से बच्चे में रूपांतरण हो सकता है।

इतने उदाहरण के बाद अब आप शायद समझ पाएंगे कि शून्य की महिमा क्या है? साधारण से साधारण और अनपढ़ से अनपढ़ मनुष्य भी इस बात को आसानी से समझ सकता है और स्वीकार सकता है और गहराई से इस विषय पर ध्यान करके शरीर के अस्तित्व के दौरान और अस्तित्व के बाद का अंतिम सत्य शून्य है, इस बात को समझकर क्षणभर में चाहे तो जाग सकता है।

जिसे योगी पुरुष महाप्रलय कहते हैं। वह प्रलय मनुष्य के भीतर प्रतिपल घटता है। ऋषियों के पास जब सभी शब्द छोटे पड़ गए तब महाशून्य की अवस्था को उन्होंने परम पद कह दिया।

प्यारे साधको!

अगर यह विधि आपको जची है तो उतरो देहशून्य ध्यान विधि में और यह धारणा कुछ ही समय में आपको, आपके मन को शून्य अवस्था में ले जाएगी। याद रहे कि मन के शून्य होते ही जगत शून्य हो जाता है और मन के सक्रिय होने के साथ माया सक्रिय होती है। दोस्तो, देहशून्यभाव में लगातार तीन महीने तक जब भी मौका मिले तब गहन मौन में जाकर उतरते रहो। इस ध्यान से महाशून्यता आपके निकट आ जाएगी और परम पद की प्राप्ति के लिए आपको कुछ विशेष नहीं करना पड़ेगा। तो अब उतरो और सत्य का अनुभव कर लो।

धारणा - 138

पदार्थ शून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 138

निज शरीर में करहुं भावना, शून्य सिवाय न कोउ विभावना।
तामे साधक दृढ़ रूप बनहुं, देह पदार्थ में शून्य ही देखहुं।।

ध्यान विधि - 138

शरीर के रस, रक्तादि पदार्थों में केवल शून्य की धारणा करके ज्ञान को उपलब्ध हो जाओ ।

यहाँ परमात्मा का अर्थ आपके मंदिर मस्जिद के परमात्मा मत लगाना। यहाँ मैं परमात्मा का एक खास अर्थ ले रही हूँ। जिसे कहूंगी "जीवंत चेतना"। जो पदार्थ को संचलित रखती है। और नए पदार्थों को बनाती भी है। निरर्थक पदार्थों को शरीर के बाहर फेंकती है और सुगठित पदार्थों को रूप रंग देकर सुंदर आकर्षक कार्यांवित और फुर्तीला बनाती है।

प्रिय साधको!

शरीर अद्भुत भी है और सुंदर भी। शरीर का आनंद भी है और सुख भी। और दूसरे बिंदु पर शरीर दुख भी है और पीड़ा भी। तीसरी दृष्टि से शरीर विज्ञान भी है और ज्ञान भी। और वही शरीर बंधन भी है और मुक्ति का साधन भी।

शरीर इतना कुछ होने के बावजूद भी उसकी अद्भुतता के प्रति मनुष्य इतना सजग नहीं है जितना शरीर सुख के प्रति सजग है। शरीर विज्ञान के प्रति भी मनुष्य इतना सजग नहीं है जितना उसके बाहरी रंग और रूप के प्रति। और यह असजगता पीड़ा और दु:ख की जड़ें हैं।

प्रिय साधको!

शरीर पदार्थों से बना है। जगत भी पदार्थों से बना है। मनुष्य का शरीर पदार्थ से बना हुआ होने की वजह से उसे पदार्थ के प्रति इतनी आसक्ति हो गई है कि फिर वह केवल पदार्थवादी अथवा वस्तुवादी बन जाता है। और पदार्थ में छिपे परमात्मा के प्रति बिलकुल उदास अथवा अंजान है। अज्ञानवश वह पदार्थों की अपेक्षा करता रहता है। और परमात्मा

की उपेक्षा। यहाँ परमात्मा का अर्थ आपके मंदिर मस्जिद के परमात्मा मत लगाना। यहाँ मैं परमात्मा का एक खास अर्थ ले रही हूँ। जिसे कहूंगी "जीवंत चेतना"। जो पदार्थ को संचलित रखती है। और नए पदार्थों को बनाती भी है। निरर्थक पदार्थों को शरीर के बाहर फेंकती है और सुगठित पदार्थों को रूप रंग देकर सुंदर आकर्षक कार्यांवित और फुर्तीला बनाती है।

साधारण मनुष्य इस सत्य के बारे में सोचता तक नहीं। रंग रूप और नाम रूपी पदार्थ के ढांचे को "मैं" मान लेता है। असल तो कोई और ही है। जब तक वह मान लिया हुआ "मैं" अर्थात शरीर को अर्थात पदार्थ देह को शून्य नहीं समझेगा तब तक वह निज में बैठे हुए परमात्मा को कैसे समझ पाएगा?

बात बहुत छोटी है परंतु सत्य है, सर्वमान्य है, सनातन है फिर भी समझना उसका स्वीकार करना और शून्यभाव में रहना मनुष्य को बहुत कठिन लगता है। क्योंकि अभ्यास पदार्थ का हो गया और परमात्मा का विस्मरण।

मैं कहना चाहूंगी कि आज के मनुष्य के रंग रूप को जितना महत्व दे रखा है इतना अतीत में शायद बहुत कम लोगों ने दिया होगा। सिंगार एक बात है, सौन्दर्य परक होना दूसरी बात है और केवल चर्म मोह, रंग रूप का मोह तीसरी बात है। सुंदर होना एक बात है और सुंदरता का प्रदर्शन करके उसे कुरूप बना देना ये दूसरी बात है।

मैं तो कहूंगी कि लज्जाशीलता में जो आकर्षण और सौन्दर्य है वह लज्जाहीनता में कहाँ? परंतु आज के मनुष्य को न प्रेम का सही बोध है न परमात्मा का। वे तो केवल पैसे को पहचानते हैं और चमड़ी को

देखते हैं। दाम और चाम पदार्थ हैं और चेतना परमात्मा। मनुष्य को परमात्मा का अथवा प्रेम का सही बोध होता तो ध्यान के लिए ज्यादा भटकना नहीं पड़ता, वह सहज बन जाता।

प्रिय साधको!

एक दूसरी बात याद रहे; प्रत्येक ध्यान विधि प्रत्येक व्यक्ति के लिए नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति एक स्वतंत्र इकाई है। उसके पास अपना एक अलग स्वभाव अलग रंग ढंग और अलग विचार होते हैं। दोस्तो! इसी कारण से मैंने अनेक ध्यान विधियों पर सत्संग किया है। विधि तो मैं संक्षेप में भी बता सकती थी। परंतु मैं चाहती हूँ कि मेरी ध्यान विधि की किताबें केवल एक ध्यान शास्त्र न रहकर महासत्संग बन जाए। ताकि उसके ज़रिए मनुष्य में एक नूतन सत्य जाग उठे। जिससे उसके लिए ध्यान कोई कठिन प्रक्रिया नहीं परंतु सहज और स्वाभाविक घटना बने, एक उत्सव बने, एक ओपरच्यूनिटी बने और एक सद्‌भाग्य की बात बने।

प्रिय साधको!

यह ध्यान विधि विशेष करके उन लोगों के लिए है कि जिनको अपने शरीर का बहुत मोह है। मैं यह नहीं कहती कि शरीर की निंदा करो, उसका दमन करो, उसको संभालो नहीं। मैं तो कहती हूँ कि वह तो परमात्मा का मंदिर है। उसे साफ-सुथरा, स्वच्छ और सुंदर रखो। परंतु देहासक्त मत बनो। वह मंदिर आपका नहीं, वह तो परमात्मा का है। बिना परमात्मा के मंदिर को मंदिर कैसे कहेंगे?

देह के प्रति इतनी आसक्ति मत रखो कि आप असत में ही जिओ और असत में ही मरो। अर्थात केवल पदार्थ को पहचानो और परमात्मा छूट जाए।

लोग मरने की बात से कांप उठते हैं, डर जाते हैं क्यों? क्योंकि देहासक्ति है। जिसकी वजह से आज दुनिया ज्यादा ब्यूटी ऑरियन्टिड हो गई है। इनफैक्ट लोग चर्म लक्षी बन गए हैं। आज के युग में जितने ब्यूटीपार्लर और मसाज सेन्टर तथा जिम हैं उतने कभी नहीं खुले।

हाँ, ये सब बातें गलत नहीं है। शरीर के प्रति सजग रहना अच्छी बात है। परंतु आज का मनुष्य यह सब सजगता से नहीं करता। देहासक्ति से करता है। ये सब पहले राजा महाराजा कराया करते थे। आज ये बातें झोंपड़-पट्टी तक पहुंच गई है। लोग इसे ब्यूटी अवेरनेस कहते हैं। मैं उसे वृद्धत्व का भय कहती हूँ। कुरूपता पर पर्दे डालने के तरीके कहती हूँ अथवा अपने असली रंग रूप की वास्तविकता को छिपाने की कीमिया कहती हूँ। आज का मनुष्य शायद अंदर से खोखला होता जा रहा है।

हर आदमी सौन्दर्य स्पर्धा में खड़ा रहना चाहता है। टी.वी. के रंगीन पर्दों ने नर-नारियों को भ्रमित कर दिया है। आज कला नहीं अशलीलता दिखती है। पुरुषार्थ नहीं सौन्दर्य बिकता है। व्यक्ति नहीं चारित्र बिकता है।

मुझे समझने की कोशिष करना। पहले के जमाने में गरीब लोगों को कोई और बेच देता था जो गुलाम प्रथा के नाम से प्रचलित है। परंतु आज तो रंग राग, ऐशो-आराम के लिए मनुष्य खुद बिकना चाहता है। यह धंधा बड़े शहरों में बड़े पैमाने पर एस्कोर्ट बिज़नेस के नाम से चल रहा है।

दोस्तो! एक जमाने में फिल्मों में काम करना निम्न कोटि का और निन्दनीय माना जाता था। फिल्म की नायिकाओं को कोठों में ढूंढनी पड़ती थी। आज रूपेरी पर्दों पर पहुँचने के लिए कोई कुछ भी करने को तैयार है।

मुझे लगता है कि समाज कहीं इतना बोल्ड न हो जाए कि मेल प्रोस्टीट्यूशन और फीमेल प्रस्टीट्यूशन भी एक स्टेटस बन जाए। सरकार तो सब काम के लिए मान्यता दे देगी। लेकिन समाज भी ऐसी बातों का गौरव लेगा! खैर, जिसके परमात्मा को जो मंजूर है ऐसा वह करता है।

मैं कोई समाजसुधारक या गांधीवादी नहीं हूँ। मैं तो यह चाहती हूँ कि मनुष्य स्वयं अपना उद्धारक बने। और इसीलिए मनुष्य को ध्यान में ले जाने के ध्येय को पकड़कर मैं आध्यत्मिक पुरुषार्थ कर रही हूँ। मनुष्य को जगाना यह सबसे बड़ा समाज सुधारणा का प्रारंभ है। और ध्यान में मनुष्य के जागने की संभावनाएं पड़ी हैं। फिर भी मुझे जो बाते जरूरी लगती हैं वे बातें मैं कर रही हूँ।

किसी तथाकथित धार्मिक मनुष्य की रुचि और रुचिभंग से मेरा लेना देना नहीं है। मेरा ध्येय है मनुष्य को सत्य के प्रति जगाना। सुभाषितकार ने भले कहा कि "सत्यं ब्रुयात प्रियं ब्रुयात"। परंतु हर बार जरूरी नहीं कि इस सूत्र का पालन हो पाए। यह वाक्य मुझे कभी कभी संदिग्ध लगता है।

दोस्तो! सबको प्रिय लगे ऐसा सत्य बोलने के लिए बौद्धिक चातुर्य का प्रयोग करना पड़ता है। परंतु मुझसे ऐसा नहीं हो पाएगा। मैं ऐसा करने की कोशिष भी करूंगी तो मुझे वह अधर्म लगेगा। सत्संग की सहजता खत्म हो जाएगी। फिर मेरी बातें शूगर कॉटेड हो जाएंगी। अक्सर ना हिम्मत और नासमझ लोग शूगर कॉटेड बातें बोलते हैं और सुनते हैं।

मैं चाहती हूँ कि मुझे पढ़ने वालों का सीना या सुनने वालों का सीना चौड़ा हो। मुझे सुनने या पढ़ने वाले साहसी, उदार तथा खुले मन के हों। ऐसे प्रमाणिक लोग ही मुझे पढ़ पाएंगे, सुन पाएंगे और ध्यान में उतर पाएंगे।

प्यारे साधको!

ये सब मुझे इसलिए कहना पड़ रहा है कि खून पसीने की कमाई की जगह जिस समाज में मनुष्य ने ब्यूटी और बॉडी सेलर का व्यवसाय स्वीकार कर लिया हो। सास और बहु तथा माँ और बेटी के बीच में सुंदर दिखने की होड़ लगी हो, फैशन की स्पर्धा हो रही हो। जहाँ इतना अज्ञान विकसित होता जा रहा हो कि शरीर को ही सर्वस्व मान लिया जाए और उसे सुख देने के लिए धन को सर्वोपरि माना जाए तब ऐसे बेहोश, मदहोश और मूर्छित मनुष्य को जगाने के लिए शायद मेरी वाणी और यह ध्यान विधि सबसे ज्यादा उपकारक सिद्ध हो सकती है।

आपके मन में शायद प्रश्न उठेगा कि ऐसे लोग क्या आपकी ध्यान शिबिर में आएंगे? आपकी बताई हुई ध्यान विधियों में से गुज़रेंगे? मैं कहती हूँ कि जरूर आएंगे। ऐसे लोग जल्दी आएंगे। हिट एन्ड फिट दिखने के लिए जो लोग उठा पटक कराने वाले और योग के नाम से नमक-मिर्च बेचने वाले बाबाओं के पास जाते हैं तो ध्यान में क्यों नहीं आएंगे?

आप कहेंगे कि ध्यान मार्ग तो कठिन है। वहाँ तो स्वयं को बदलना पड़ता है इसलिए ऐसे लोग शायद नहीं आएंगे। परंतु मैं कहती हूँ कि ध्यान मार्ग पैरों को ऊपर और सर को नीचे करने से तो ज्यादा आसान है। दूसरी बात यह है कि ऐसे लोग बेहोशी में भले कुछ भी करते हों परंतु तथाकथित धार्मिक और दंभी लोगों से तो बहुत अच्छे हैं। तीसरी बात कि वे लोग कैसे भी हैं परंतु आदमी तो बने रहे हैं। किसी संप्रदाय के खीले का पशु या बाड़ का भेड़ नहीं बन चुके हैं। और सबसे अहम बात तो यह है कि वैसे लोग बाहर से सुंदर खुश दिखते हैं परंतु भीतर से बहुत आशांत

होते हैं। अपराध भाव उसके दिल को कुरेदता रहता है। कुछ बातें उनके भीतर नासूर बनी बैठी हैं। उनकी ज़हन सुंदर जहन्नुम से छूटने से बार बार पुकार रही है। उन्हें जरूरत है सच्चे मार्गदर्शक की।

एक बात याद रहे! बुद्ध हो या अंगुलीमाल सत्य तो सबको अच्छा लगता है। शांति और मुक्ति को सब चाहते हैं। परंतु उन्हें योग्य क्षण की प्रतीक्षा रहती है। अंगुलीमाल को जब कोई बुद्ध मिल जाता है तब फिर वह चाहने पर भी अंगुलीमाल नहीं रह सकता। याद रहे! मनुष्य के जीवन में परिवर्तन के क्षण बहुत छोटे होते हैं और परिवर्तन बड़ा। यह बात में कई बार कह चुकी हूँ।

प्रिय साधको!

ध्यान मार्ग का एक मज़ा है। इसमें भला बुरा, धार्मिक–अधार्मिक, पापी पुण्यवान, या हिन्दु मुस्लिम का भेद नहीं होता। वह तो राजमार्ग है। वहाँ सब चल सकते हैं। ध्यान है पशुता में से मनुष्यता में प्रवेश करने का उत्तम द्वार। भारत के मनीषियों ने कहा है "क्षिप्रं भवति धर्मात्मा"। पतित मनुष्य सत्य में जल्दी प्रवेश कर सकता है।

खैर! मूल विषय की ओर आइए। पदार्थ शून्य भाव ध्यान विधि तीनों स्तर के लोगों के लिए उपयोगी है। एक तो वह कि जिसे थोड़ा बोध है। पदार्थ के साथ जिसे परमात्मा में भी रस है। अर्थात चेतना जगत को समझ सकता है। ऐसा व्यक्ति अगर इस ध्यान में उतरेगा तो शीघ्र ही अपने शरीर के रस, रक्त, मेद, मांस, अस्थि और मज्जा आदि सब शून्य है ऐसे बोध को उपलब्ध हो पाएगा। और शून्य में ही दृढ़ भाव से स्थिर होकर देहासक्ति के गाढ बंधन से मुक्त हो पाएगा।

मध्यम प्रकार के लोग जो सीधा सादा जीवन जी रहे हैं परंतु जिन्हें केवल शरीर का ही बोध है उससे आगे कुछ ज्यादा सोच या समझ नहीं है। ऐसे लोग अगर विधि को पढ़ेंगे या इस सत्संग के संपर्क में आएंगे तो पहले तो थोड़ा घबरा जाएंगे कि जो प्रत्यक्ष है वह नहीं है और जो नहीं है (शून्य) वह है; ऐसा मानना या समझना यह तो अजीब है! परंतु हाँ, उसके पास अगर कुतर्क नहीं है, और सत्य में उतरने की थोड़ी सी भी जिज्ञासा है तो उसका काम हो जाएगा।

ध्यान में बैठते बैठते उसे अनुभव होने लगेगा कि "शरीरमाद्यम खलु धर्म साधनम्"। धर्म को प्राप्त करने के लिए यहाँ केवल शरीर ही साधन है। परंतु इसका अर्थ यह हुआ कि अंतिम सत्य धर्म है, शरीर नहीं। सफलता है साधन नहीं। साधन तो सिर्फ माध्यम हुआ।

ऋषियों ने ऐसा नहीं कहा कि शरीर को पाने का माध्यम केवल धर्म है। इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म, सत्य, सजगता, होश, ये लक्ष्य है और शरीर केवल एक उपकरण। धर्म कोई उपकरण नहीं है। वह तो उद्देश्य है, अंतिम फलश्रुती, जीवन का निष्कर्ष अथवा एक अवस्था है; जिसे ज्ञानीजन ब्रह्मत्व, शिवत्व, प्रबुद्धत्व आदि नाम से जानते हैं।

तीसरे प्रकार के लोग जिसका ध्यान में या धर्म में कोई रस नहीं उनके लिए यह शरीर ही सबकुछ है और जीवन शैली आडी टेढ़ी है। उनके लिए तो यह विधि खास उपयोगी है क्योंकि सीधा सादा और सरज जीवन जीने वाला इतना अशांति से भरा हुआ नहीं होता जितना फ्री-लाईफस्टाइ वाला।

ऐसे लोग थोड़े भ्रमित और अंदर से थोड़े भयभीत होते हैं। खास करके वृद्धत्व से। और उस भय के कारण अशांत भी। उनकी अशांति का

कारण ही रंग-रूप है। वे बेचारे रंग-रूप में साक्षी भी नहीं रह सकते और जीवन भर एक से रंग रूप को पकड़े रखने का या बचाए रखने का उनके पास कोई उपाय भी नहीं होता। तब भय और अशांति का होना स्वाभाविक है। ऐसे लोग मंदिर में और कन्फेशन बोक्स में जाकर मन ही मन प्रायश्चित कर सकते हैं परंतु संत के संग से दूर भागते हैं। ऐसा क्यों? क्योंकि संत का तप और ताप उनसे सहन नहीं होता। वे सत्य को जल्दी नहीं पचा सकते। हाँ, ऐसे लोग माला, तावीज, ज्योतिष, जेमोलोजी, मेस्मेरिज़्म आदि का आधार अपनी सलामती के लिए लेते हैं और उसे ही वे धर्म समझते हैं। परंतु वास्तव में वे सब भयभीत मानव के लिए आश्वासन है।

ज्यादातर लोगों का जीवन आश्वासन में गुजर जाता है। सत्य में उसका रस जगता ही नहीं। परंतु ऐसे लोग अपने मन की तसल्ली के लिए यहाँ वहाँ भटकते रहते हैं। ऐसी भटकन में सद्भाग्य से कभी सत्य से टकराहट हो जाती है। वह चोट कठोर परंतु जगा देने वाली होती है। जो जाग जाता है वह फिर स्वप्नों के सुखों की, पत्तों के महलों की या क्षणिक भोगों की चिंता नहीं करते।

भीतर से खाली और अशांत लोग चलते पुर्जे जैसे बाबाओं के आशीर्वाद के लिए विशेष भूखे होते हैं। ऐसे भूले भटके लोग कभी कभी शांति के स्वार्थ के लिए मेरे पास आ जाते हैं। यहाँ आकर उसकी सारी धारणाएं भस्मीभूत हो जाती हैं।

मैंने देखा है कि कुछ लोग धर्म स्थान को भी नहीं छोड़ते हैं, वे वहाँ भी शिकार की खोज से जाते हैं परंतु कभी कभी ऐसा होता है कि शिकारी खुद शिकार बन जाता है। जैसे वालिया भील लूटने चला था नारद को और खुद लुट गया। यह मुकाबला जान की बाजी लगाने जैसा

होता है। परंतु जीत हमेशा सत्य की होती है। जीत जाग्रति की होती है मूर्छा की नहीं। और ऐसे लोग जब जाग जाते हैं तब ध्यान में जल्दी स्थिर हो सकते हैं।

प्यारे साधको!

केवल शरीर को ही सर्वस्व मानने वाले नासमझ लोगों के लिए यह ध्यान विधि बहुत उपयोगी है। अब यह समझ लो कि इस धारणा में कैसे उतरना है? परंतु यह जानने से पहले एक छोटी सी एक बात और समझ लें।

जो मनुष्य अपने शरीर के प्रति अति मोहांध है और देहाभिमान से पीड़ित है, जो सुंदर शरीर को देखकर विचलित हो जाता है। तो उसे एक सिम्पल बात समझा देनी चाहिए कि गोरापन या चिकनापन तो एक रसायण की वजह से है जिसे आधुनिक विज्ञान मेलेनिन कहता है।

किसी का गोरा या काला होना इसमें उसका कोई दोष नहीं है। केवल यूरोप, अमेरिका के नहीं परंतु करीब करीब हर गोरी औरत या सुंदर पुरुष यह गलती कर रहा है और अचानक बुढ़ापा या मृत्यु सबकुछ चौपट कर देती है।

खैर, अस्तित्व जो करता है वह ठीक ही करता है परंतु मुझे इतना पता है कि आपसे कुदरत के द्वारा कुछ छीना जाए उसके पहले आप उसको सहज अर्पण कर दो तो शांति बनी रहती है। यह त्याग की एक सहज अवस्था है। जो अशांति से बचाती है। क्लेश, पीड़ा और दुःख से आप बच सकते हैं। ध्यान की सारी विधियाँ मनुष्य की आत्मशांति के लिए खोजी गई हैं।

अब एक बार फिर से ध्यान दीजिए। पदार्थ शून्य ध्यान विधि में आपको शरीर से ऊपर उठने के लिए अथवा शरीर की मानसिक गुलामी अथवा अज्ञानवश रंग रूप की पीड़ा सता रही है तो इससे मुक्त होने के लिए और मृत्यु भय से मुक्ति के लिए आप जहाँ भी हो वहाँ और जब भी शरीर हावी हो जाए तब लगातार भावना करते रहो कि मेरे शरीर की सप्तधातु अर्थात रस, रक्त, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा और शुक्र वह सारे पदार्थ शून्य हैं। वे वास्तविक नहीं हैं अंत में तो शून्यता ही वास्तविक है। अगर वह न कुछ जैसे नहीं होते तो न जलते, न भीगते, न नष्ट होते, न कटते। परंतु समय के साथ काया तो कृश होती जाती है। देह के भीतर के पदार्थ क्षीण होते जाते हैं। कहाँ गई जवानी? कहाँ गया सौन्दर्य? सीधा जवाब है। मिट गए, शून्य हो गए, खत्म हो गए, न कुछ होते गए।

प्रिय साधको!

अगर यह विधि आपको जंच रही है अथवा आवश्यक लग रही है, तो आरंभ करो दृढ भावना के साथ। भीतर देखो अपनी चमड़ी फिर चमड़ी में भरा रस, रस के बाद रक्त, रक्त के बाद मांस, मांस के बाद मेद ... एक एक करके सबमें शून्य की भावना करो। तो फिर अंत में प्रश्न उठेगा वह प्रश्न दार्शनिक नहीं परंतु अस्तित्व में से आएगा। कि "मैं कहाँ?" तब जवाब भी अस्तित्व में से आएगा। कि "मैं" तो पदार्थ में था। पदार्थ शून्य तो "मैं" भी शून्य। फिर बची रहती है केवल चलती फिरती सजग चेतना। ऐसी अवस्था में जब आप प्रवेश करेगे तब केवल मैं नहीं परंतु बुद्ध और महावीर उपरांत सारे अवतार और देवगण भी उत्सव मनाएंगे तथा आपकी रक्षा के लिए तत्पर रहेंगे और आप मरकर भी अमर हो जाएंगे। केवल पदार्थ मिटेगा, चेतना अखंड रहेगी।

धारणा - 139

अंतर-बहिर शून्य भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 139

अंतर बहिर सर्व स्थान में, शून्याति शून्य मध्य धाम में।
दृढ बुद्धि से वासना मुक्ति, शून्य भाव से प्रकाश प्राप्ति।।

ध्यान विधि - 139

भीतर और बाहर दृढ
बुद्धि से शून्यातिशून्य
केन्द्र में प्रवेश करके
वासना-शून्य बन जाओ।
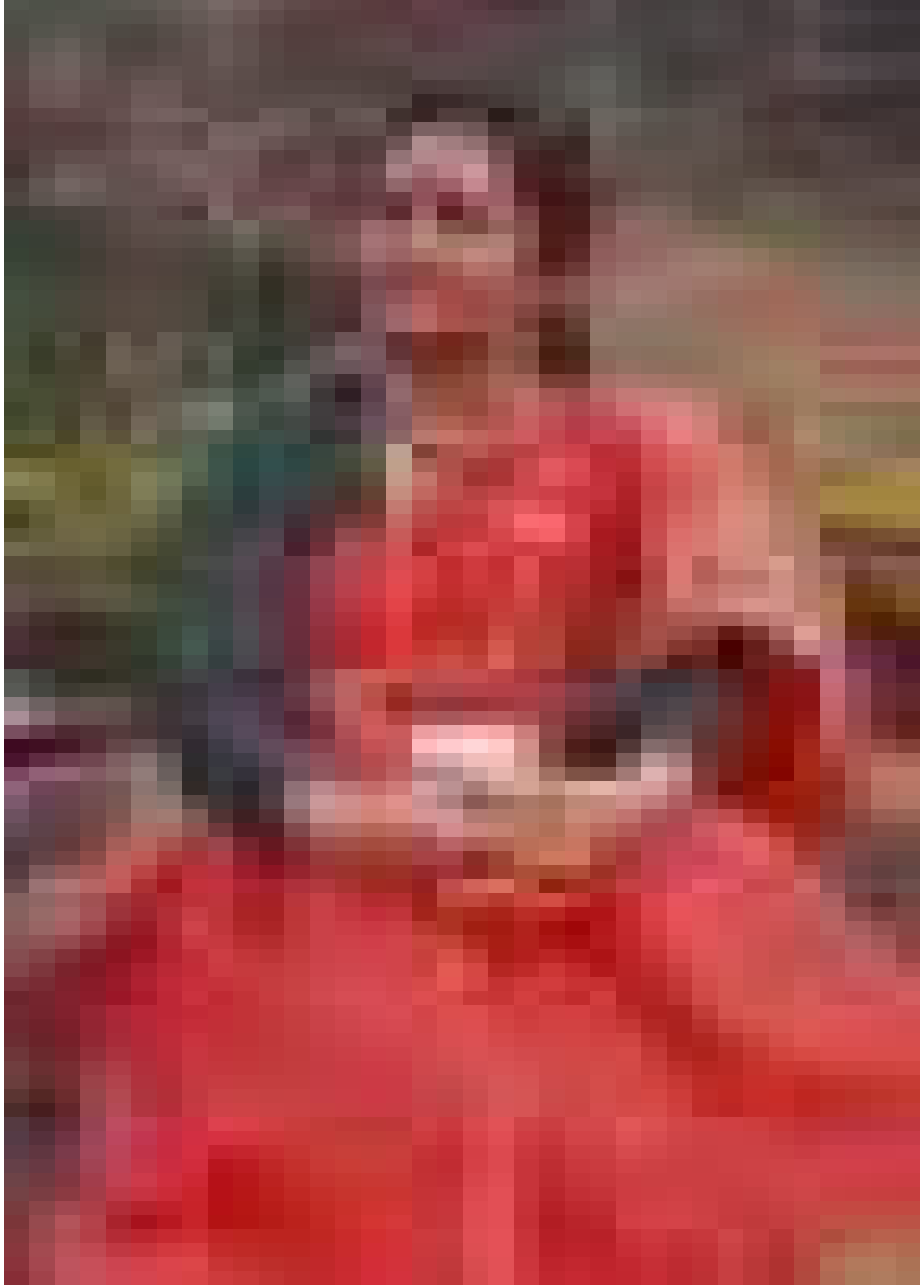
दोस्तो, भीतर और बाहर का संबंध है। एक मिटता है तो दूसरा सहजता से अदृश्य हो जाता है। मति परिशुद्धता को प्राप्त करके शून्य में प्रवेश कर लेते हैं। फिर कोई बौद्धिक आयास प्रयास नहीं तर्क वितर्क या कुतर्क नहीं; कोई विचार या अस्मिताबोध भी नहीं। जब सब कुछ शून्य हो गया तो अब धारणा किसकी करें? अब तो शून्यभाव भी गया क्योंकि भाव करने वाला ही नहीं बचा।

प्यारे साधको!

जब मनुष्य स्वयं के शरीर को शून्य मान लेता है अर्थात देह में शून्यता का अनुभव कर सकता है तब अंतर में और बाहर हर स्थान में शून्य भाव करना कोई कठिन साधना नहीं रहेगी। क्योंकि मनुष्य सबसे ज्यादा अपने मन को, बुद्धि को, अहंकार को और बाद में शरीर को प्रेम करता है। उन सबसे ज्यादा प्रेम करने योग्य कुछ है तो वह है सत्य। जिसे ईसू, मंसूर, महम्मद, मीरा और सोक्रेटिस आदि कई महात्माओं ने किया।

प्यारे साधको!

शून्य भाव से संलग्न सात विधियों में पहला पड़ाव है ज्ञानेन्द्रियों की शून्यता, दूसरा बारह सूक्ष्म स्थानों का, तीसरा मन का, चौथा शरीर संग सर्व दिशा का, पाँचवा शरीर के तंत्रों के शून्य स्थान का, छट्ठा देहिक पदार्थों का और अब अंतिम पड़ाव है भीतरी और बाहरी सभी स्थानों का।

यहाँ अंतर का अर्थ है – "मैं आत्मा हूँ, अजर हूँ, अमर हूँ..."। हो सकता है कि एक बार कोई नाश्वंत शरीर को शून्य मान भी ले क्योंकि मृत्यु के बाद शरीर खो जाता है। परंतु गीता के श्लोक को पकड़कर – "नैनं

छिंदंति शस्त्राणिह्न – इस पंद्रहवे अध्याय के निवेदन पर अटक जाएं और वहाँ फिर से आत्मा के नाम पर एक नया "मैं" जन्म ले ले तो ऐसा "मैं" साधक की परम मुक्ति में बाधा बन सकता है। क्योंकि वहाँ शरीर की आसक्ति छोड़कर आत्मा के साथ जोड़ दी। और एक नया बंधन खड़ा हो गया।

शायद इसीलिए बुद्ध ने "अनत्ता" का बोध दिया है कि मैं आत्मा भी नहीं हूँ। साधना के अंतिम सोपानों में अंतर में या बाहर शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं रहना चाहिए।

साधक शून्यातिशून्य मध्यधाम में निवास करते हुए भी सारी धारणाओं से मुक्त हो जाए तभी विधि की सफलता है। समझना यह है कि जब भीतर कुछ नहीं रहा, "मैं" नहीं रहा "आत्मा" की धारणा भी छूट गई तो फिर बाहर क्या रहेगा।

दोस्तो, भीतर और बाहर का संबंध है। एक मिटता है तो दूसरा सहजता से अदृश्य हो जाता है। मति परिशुद्धता को प्राप्त करके शून्य में प्रवेश कर लेते हैं। फिर कोई बौद्धिक आयास प्रयास नहीं तर्क वितर्क या कुतर्क नहीं; कोई विचार या अस्मिताबोध भी नहीं। जब सब कुछ शून्य हो गया तो अब धारणा किसकी करें? अब तो शून्यभाव भी गया क्योंकि भाव करने वाला ही नहीं बचा।

इस अवस्था को बुद्ध महाशून्य में प्रवेश कहते हैं, शिव तंत्र शास्त्र में शून्यातिशून्य मध्यधाम कहते हैं, पतंजलि उसे असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं और मैं उसे बोध के भी पार की अवस्था कहूँगी। जहाँ कोई तत्व के बारे में भी बोध करने वाला नहीं बचा। जहाँ कोई शिवोहं या अहं ब्रह्मास्मि का स्मरण करने वाला भी नहीं रहा। कितनी प्यारी है यह अवस्था! संकल्प

विकल्प करने वाला तो गया शून्य में। ऐसे महाशून्य में प्रविष्ट सिद्ध को देखकर मुझमें कुछ पंक्तियाँ स्फुरित हो उठती हैं –

तुझ देखकर ये खयाल आ रहा है,
जन्नत से कोई पयाम आ रहा है।

ऐसा सिद्ध स्वयं ईश्वर का मौन और सुवासित संदेश है और ऐसी अवस्था में प्रवेश करने का विशेषाधिकार लेकर आप पृथ्वी पर आए हैं।
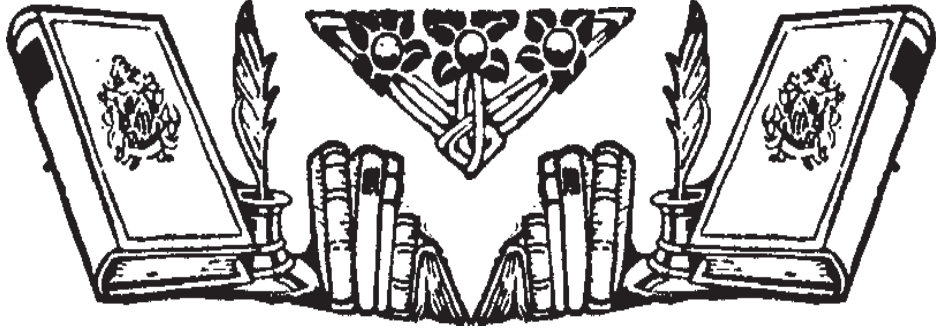
एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्‍गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की

प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरूमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरूमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण ह्रदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरूमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रहीं हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजिओं के लिए पूज्य गुरूमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रहीं हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रहीं हैं। पूज्य माँ कहतीं हैं कि–

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ ख़लक़त के लोगों को।
चली जाऊं तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना।।

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरूमैया हरेश्वरीदेवीजी के परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ –

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा है कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधिओं की शोध की और कुछ प्राचीन विधिओं की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की जरूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का ह्रास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सद्गुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरूमैया अंतिम पैंतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रहीं हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरूमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।

पूज्य गुरूमैया अनेकानेक भ्रमजालों में घिरे हुए समाज को धीरे धीरे मुक्त कर रहीं हैं। एक नारी शक्ति के द्वारा उठाई गई ये चुनौति कोई साधारण नहीं है। पूज्य गुरूमैया का जन्म गुजरात-सौराष्ट्र के भावनगर जिले के गढड़ा स्वामीना में एक औदीच्य ब्रह्माण परिवार में २४ जून १९६४ में हुआ। गढड़ा जैसे गाँव में इसे धर्म के एक अति से दूसरी अति पर पहुँची हुए एक कुदरती घटना ही कह सकते हैं। पूज्य गुरूमैया ने सन्यास लेकर कोई नाम नहीं बदला। अपने माता पिता को ही गुरु मानकर अध्यात्म के आसमान में बचपन से ही उड़ना शुरु किया।

एक अपार प्रतिभा संपन्न नारी ऊर्जा का नाम है ध्यानगुरु हरेश्वरीमैया। एक सर्जक, चिंतक, कवयित्री, आयुर्वेदज्ञ, योगिनी, धर्म प्रवक्ता, पुराणों की नवसर्जक, योग-शास्त्र और ध्यान-शास्त्र रचियता उपरांत एक सींगर, कम्पोज़र, ध्यानगुरु और वात्सल्य मूर्ति विश्व माता।

पूज्य गुरूमैया ने सिर्फ १४ साल की उम्र में ज्ञानोपलब्धि के बाद महाभिनिष्क्रमण किया। जीवन के सही दर्शन हेतु वह कूद पड़ी पूर्ण असुरक्षितता में। पर्ण-कुटी लगाकर दो वर्ष तक अन्न त्याग हुआ और आध्यात्मिक संघर्ष के साथ साथ आत्मोन्नति होती गई।

जैन शास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्ध कहे हैं-उनमें से एक प्रकार है, स्वयंसिद्ध। पूज्य गुरूमैया को हम स्वयंसिद्ध चेतना कह सकते है। धर्मक्रांति करते करते ही स्वयं के बल बूते पर विद्याप्रेमी पूज्य गुरूमैया ने फिर से अभ्यास शुरु किया। बी.ए., एम.ए. के

बाद एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त की। अपने भीतर पड़ी कलाओं को भी विकसित किया। भारत के कई राज्यों में करोडों लोग पूज्य गुरूमैया के सत्संग, प्रवचन, ज्ञानयज्ञ एवं ध्यान-शिबिरों द्वारा लाभान्वित हुए। गुरूमैया के धर्मक्रांतिपूर्ण विचारों का प्रचंड हकारात्मक प्रतिसाद मिला। ऐसे आरोह अवरोह में से गुज़रकर एक छोटी सी गंगोत्री धर्मक्रांति एवं ध्यानकार्य करते करते अब तो बन गई है एक महासागर।

अनेक नूतन ध्यान विधियों की पुरस्कर्ता पूज्य माँ यूरोप, आफ्रीका और यू.एस.ए. आदि खंडों में धर्मक्रांति और ध्यानशिबिरों के लिए यात्रा कर चुकी हैं। किसी भी धर्मसंप्रदाय के संगठन में जुड़े बिना स्वपुरुषार्थ, आत्मबल और अतिचेतस शक्तियों के द्वारा पूज्य गुरूमैया ने जो नूतन धर्म अभियान का आरंभ किया है उसके लिए पूरा विश्व उसका ऋणी रहेगा तथा नई दृष्टि और नया जीवन पाता रहेगा।

मैं कहता हूँ कि पूज्य गुरूमैया ने विश्व को ध्यान के लिए तंदुरस्त माहोल, विचार, नई दृष्टि एवं दिशाएं दी हैं इसलिए विश्व पूज्य माँ का ऋणि रहेगा। परंतु पूज्य माँ हमेशा कहती हैं कि मैं तो ये सब करके अस्तित्व का ऋण चुका रही हूँ पृथ्वी पर की मेरी यात्रा के दौरान।

-पूज्य गुरूमैया का अनुग्रहपात्र शिष्य
एवं आश्रम का अंतेवासी
योगी स्वामी शैलेश्वर

साधना के सुनहरे सप्त सोपान

१. प्रत्येक विधि अनुभवी ध्यान गुरु के मार्गदर्शन में हो तो ज्यादा अच्छा।
२. प्रत्येक विधियों को अपने ढंग से नहीं परंतु उचित रूप से समझने के बाद ही साधना का आरंभ करें।
३. किसी भी विधि को कम से कम २४ मिनिट करें।
४. अनुकूल विधि में कम से कम ३0 दिन से लेकर ९६ दिन तक उतरें।
५. यदि संभव है तो इन ९६ दिनों के दौरान कुदरत के सानिध्य में अथवा किसी शांत आश्रम में निवास करें।
६. सात्विक आहार, सज्जनों का संग, मौन और नशाकारक पदार्थों से दूर रहना - ज्यादा हितकर है।
७. साधना समय के वस्त्र अलग रखें। सफेद, भगवा अथवा हरा रंग ज्यादा सहयोग कर पाएगा। वस्त्र खुले और स्वच्छ होने चाहिए।

-: ध्यान मंदिर :-

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात, भारत
www.maahareshwaridevi.com. email: info@maahareshwaridevi.com

ध्यान प्रेमियों के लिए गुरुमैया हरेश्वरीदेवीजी द्वारा संपूर्ण प्राकृतिक, शांत, सुरक्षित एवं सादगीपूर्ण माहौल में स्थापित किए गए ध्यान तीर्थ

ध्यान मंदिर

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात

ध्यानयोग शक्तिपीठ

शांतीनगर कोलोनी, खंभरा, अंजार, कच्छ, गुजरात

ध्यानपीठ

वाडला फाटक, वंथली रोड, जुनागढ़, गुजरात

ध्यान साधना कुटिर

नर्मदा तट, मालसर, शिनोर, वडोदरा, गुजरात

ॐकारधाम ध्यानतीर्थ

अंजार-भुज हाईवे, सापेड़ा गाम से पहले, कच्छ, गुजरात